# इकाई –2

# केन्द्र–राज्य सम्बन्ध
# (Centre-State Relations)

---

## 2.0 इकाई का परिचय

भारत के संविधान में शक्तियों के विभाजन का प्रावधान है जो सरकार की विभिन्न इकाईयों में विभाजित है। ये इकाइयाँ इस प्रकार हैं, संघ या केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा स्थानीय सरकार। इनके बीच शक्तियों का विभाजन किया गया है, जिसे हम संघवाद तथा विकेन्द्रीकरण के रूप में भी देख सकते हैं। इसे हम शक्तियों का विभाजन भी कहते हैं। इस इकाई में आप पढ़ेगें कि कानून बनाना, कानूनों को लागू करवाना तथा कानूनों की व्याख्या करना, उनका क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन करना सरकार के महत्वपूर्ण कार्य हैं। इस इकाई में उच्चतम न्यायालय व न्यायिक पुनरावलोकन के परिप्रेक्ष्य में जानेगें। यह इकाई आपको भारत के कई प्रकार के राजनीतिक दलों व उनकी विशेषताओं के बारे में अवगत करवाएगी तथा भारत में किस प्रकार की दलीय व्यवस्था कायम है, इसकी भी चर्चा करते हैं।

## 2.1 इकाई के उद्देश्य

- केन्द्र–राज्य संबंधों को जानना।
- भारतीय उच्चतम न्यायालय व न्यायिक पुनरावलोकन को समझना।
- दलीय व्यवस्था का अर्थ एवं राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दलों के बारे में जानना।

## 2.2 केन्द्र–राज्य सम्बन्ध (Centre-State Relations)

### 2.2.1 परिचय

संघीय संविधान, राष्ट्रीय प्रभुता तथा राज्य प्रभुता के बीच, जो कि ऊपरी दृष्टि से विरोधी जान पड़ती है, सामंजस्य पैदा करने का प्रयत्न करता है। संविधान के अन्तरंग में ही कुछ ऐसे उपबन्ध होते हैं जो सामंजस्य के तौर–तरीकों पर प्रकाश डालते हैं। केन्द्र एवं राज्यों की सरकारों के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना करने वाली संघ प्रणाली को 'सहयोगी संघवाद' की संज्ञा दी जाती है। इस व्यवस्था में संघीय सरकार शक्तिशाली तो होती है, किन्तु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्रों में कमजोर नहीं होती, साथ ही, दोनों सरकारों की एक–दूसरे पर निर्भरता इस व्यवस्था का मुख्य लक्ष्य होता है। संघवाद का बुनियादी तत्त्व है – शक्तियों का विभाजन। सहयोगी संघवाद में शक्तियों के विभाजन के उपरान्त भी केन्द्र एवं राज्यों के बीच अन्तःक्षेत्रीय सहयोग पर बल दिया जाता है। यह सहयोग केन्द्रीय एवं प्रादेशिक सरकारों के बीच ही नहीं अपितु विभिन्न प्रादेशिक सरकारों एवं असंख्य राजनीतिक संरचनाओं के मध्य भी दिखलाई देता है।

वस्तुतः कोई भी संघीय शासन प्रणाली वाला देश आज यह दावा नहीं कर सकता कि वह केन्द्र–राज्य मतभेदों की समस्या से पूर्णतया उन्मुक्त है। यथार्थ में संघ व्यवस्था, जिसका आधार परस्पर सामंजस्यपूर्ण हिस्सेदारी की भावना है, को तनावों का संस्थाकरण (Institutionalised tensions) करने वाली व्यवस्था भी कहा जा सकता है।

अमेरीका के संविधान के विपरीत, जिसमें केवल केन्द्र सरकार की शक्तियों का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया

है कि अवशेष शक्तियाँ राज्यों को दी गई हैं, भारत के संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण की एक अधिक निश्चित सुस्पष्ट योजना अपनाई है।

### 2.2.2 उद्देश्य

- केन्द्र–राज्य संबंधों को जानना।
- भारतीय संविधान में शक्तियों के विभाजन का तर्क समझना।
- संघीय राजनीति के लिए शक्तियों के विभाजन के महत्त्व का मूल्यांकन करना।
- केन्द्र–राज्य संबंधों एवं संघवाद की प्रकृति के बीच संबंधों का विश्लेषण करना।

### 2.2.3 केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की विशेषताएँ (Features of Centre State Relations)

संविधान द्वारा प्रस्तुत केन्द्र–राज्य सम्बन्धों का विश्लेषण करने से निम्न तथ्य उभरते हैं–

1. शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार – संविधान–निर्माताओं ने केन्द्रीय सरकार को अत्यन्त शक्तिशाली बनाया है। वह किसी भी सूची के विषयों पर कानून बना सकती है। वह अवशिष्ट शक्तियों का उपभोग कर सकती है और राज्यपालों द्वारा राज्यों पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है। उसकी आय के साधन अधिक हैं और वह राज्यों को ऋण भी दे सकती है।
2. राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं के समतुल्य – संघ एवं राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण इस प्रकार किया गया है कि राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं के समतुल्य हो गई है। जिस प्रकार नगरपालिकाएँ राज्य सरकारों पर पूर्णतः निर्भर है, उसी प्रकार राज्य सरकारें भी सभी क्षेत्रों में संघ सरकार पर निर्भर है।
3. सहयोगी संघवाद – ग्रेनविल ऑस्टिन के अनुसार, ''भारत की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संविधान सभा ने एक विशिष्ट प्रकार के संघवाद को जन्म दिया है'' जिसे ए.एच.वर्च ने 'सहयोगी संघवाद' की संज्ञा दी है। इस व्यवस्था में संघीय सरकार शक्तिशाली होती है, किन्तु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्रों में कमजोर नहीं होती, साथ ही दोनों ही सरकारों की एक–दूसरे पर निर्भरता इस व्यवस्था का मुख्य लक्षण होता है।
4. भारतीय संघ की आत्मा एकात्मक – राष्ट्रपति द्वारा आपातकाल की उद्घोषणा किए जाने पर राज्यों की स्वायत्तता को स्थगित किया जा सकता है और इस दिशा में राष्ट्रपति राज्य का सारा कामकाज अपने प्रतिनिधि राज्यपाल के माध्यम से चला सकता है। केन्द्र की शक्तियाँ आपातकाल में ही नहीं अपितु सामान्यकाल में भी बढ़ाई जा सकती हैं, अतः भारतीय संघ की आत्मा एकात्मक कही जा सकती है।

संविधान के आधार पर संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध।
2. केन्द्र तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्ध।
3. केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध।

### 2.2.4 केन्द्र–राज्य विधायी सम्बन्ध (Legislative Relations)

संघ व राज्यों के विधायी सम्बन्धों का संचालन उन तीन सूचियों के आधार पर होता है जिन्हें संघ सूची (Union List),

राज्य सूची (State List) व समवर्ती सूची (Concurrent List) का नाम दिया गया है। इन सूचियों को सातवीं अनूसूची में रखा गया है।

संघ सूची (Union List) – इस सूची में राष्ट्रीय महत्त्व के ऐसे विषयों को रखा गया है जिनके सम्बन्ध में सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की नीति का अनुकरण आवश्यक कहा जा सकता है। इस सूची के सभी विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार संघीय संसद को प्राप्त है। इस सूची में कुल 97 विषय हैं जिनमें कुछ प्रमुख यह हैं – रक्षा, विदेशिक मामले, युद्ध व सन्धि, देशीयकरण व नागरिकता, विदेशियों का आना–जाना, रेलें, बन्दरगाह, हवाई मार्ग, डाक, तार, टेलीफोन व बेतार, मुद्रा निर्माण, बैंक, बीमा, खानें व खनिज आदि।

राज्य सूची (State List) – इस सूची में साधारणतया वे विषय रखे गए हैं, जो क्षेत्रीय महत्त्व के हैं। इस सूची के विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार सामान्यतया राज्यों की व्यवस्थापिकाओं को ही प्राप्त है। मूल संविधान के अनुसार इस सूची में 66 विषय थे, लेकिन 42वें संवैधानिक संशोधन (1976) से इस सूची के चार विषय शिक्षा, वन, जंगली जानवरों और पक्षियों की रक्षा तथा नाप–तोल, राज्य सूची से समवर्ती सूची में कर दिए गए हैं। राज्य सूची के कुछ प्रमुख विषय हैं : पुलिस, न्याय, जेल, स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई और सड़कें, आदि।

समवर्ती सूची (Concurrent List) – इस सूची में साधारणतया वे विषय रखे गए हैं, जिनका महत्व क्षेत्रीय व संघीय दोनों ही दर्ष्टियों से है। इस सूची के विषयों पर संघ तथा राज्य – दोनों को ही विधियाँ बनाने का अधिकार प्राप्त है। यदि इस सूची के विषय पर संघीय तथा राज्य व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून परस्पर विरोधी हो, तो सामान्यतः संघ का कानून मान्य होगा। इस सूची में कुल 47 विषय हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख ये हैं – फौजदारी विषय तथा प्रक्रिया, निवारक निरोध, विवाह और विवाह–विच्छेद, दत्तक और उत्तराधिकार, कारखाने, श्रमिक संघ, औद्योगिक विवाद, आर्थिक और सामाजिक योजना, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा, पुनर्वास और पुरातत्त्व आदि।

अवशेष विषय (Residuary List) – संयुक्त राज्य अमरीका, स्विट्जरलैण्ड और आस्ट्रेलिया में अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण का अधिकार इकाइयों को प्रदान किया गया है, लेकिन भारतीय संघ में कनाडा के संघ की तरह अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण की शक्ति संघीय संसद को प्रदान की गई है।

## राज्य सूची के विषयों पर संसद की व्यवस्थापन शक्ति (Parliament can Legislate on the Subjects of State List)

सामान्यता संविधान द्वारा किए गए इस शक्ति–विभाजन का उल्लंघन किसी भी सत्ता द्वारा नहीं किया जा सकता। संसद द्वारा राज्य सूची के किसी विषय पर और किसी राज्य की व्यवस्थापिका द्वारा संघीय सूची के किसी विषय पर निर्मित कानून अवैध होगा, लेकिन संसद के द्वारा कुछ विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय एकता हेतु राज्य सूची के विषयों पर भी कानूनों का निर्माण किया जा सकता है। संसद को इस प्रकार की शक्ति प्रदान करने वाले संविधान के कुछ प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं :

(i) राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्त्व का होने पर – संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार, यदि राज्य सभा अपने दो–तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है कि राज्य सूची में निहित कोई विषय राष्ट्रीय महत्त्व का हो गया है, तो संसद को उस विषय पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसकी मान्यता केवल एक वर्ष तक रहती है। राज्यसभा द्वारा प्रस्ताव पुनः स्वीकृत करने पर इसकी अवधि में एक वर्ष की वर्षद्धि और हो जाएगी। इसकी अवधि समाप्त हो जाने के उपरान्त यह 6 माह तक प्रयोग में आ सकता है।

(ii) राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर – अनुच्छेद 252 के अनुसार, यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पास कर यह इच्छा व्यक्त करते हैं कि राज्य सूची के किन्हीं विषयों पर संसद द्वारा कानून निर्माण किया जाए, तो उन राज्यों के लिए उन विषयों पर अधिनियम बनाने का अधिकार सांसदों को प्राप्त हो जाता है। राज्यों के विधानमण्डल न तो उन्हें संशोधित कर सकते हैं और न ही इन्हें पूर्णरूप से समाप्त कर सकते हैं।

(iii) संकटकालीन घोषणा होने पर (अनुच्छेद 250)– संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्य की समस्त विधायिका शक्ति पर भारतीय संसद का अधिकार हो जाता है। इस घोषणा की समाप्ति के 6 माह बाद तक संसद द्वारा निर्मित कानून पूर्ववत् चलते रहेंगे।

(iv) विदेशी राज्यों से हुई सन्धियों के पालन हेतु (अनुच्छेद 253) – यदि संघ सरकार ने विदेशी राज्यों से किसी प्रकार की सन्धि की है अथवा उनके सहयोग के आधार पर किसी नवीन योजना का निर्माण किया है, तो इस सन्धि के पालन हेतु संघ सरकार को सम्पूर्ण भारत के सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत पूर्णतया हस्तक्षेप और व्यवस्था करने का अधिकार होगा। इस प्रकार इस स्थिति में भी संसद को राज्य सूची के विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(v) राज्य में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर (अनुच्छेद 356) – यदि किसी राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाए या संवैधानिक तंत्र विफल हो जाए तो राष्ट्रपति राज्य विधानमण्डल के समस्त अधिकार भारतीय संसद को प्रदान कर सकता है।

(vi) कुछ विधेयकों को प्रस्तावित करने और कुछ की अन्तिम स्वीकृति के लिए केन्द्र का अनुमोदन आवश्यक – उपर्युक्त परिस्थितियों में तो संसद द्वारा राज्य सूची के विषयों प कानूनों का निर्माण किया जा सकता है, इसके अतिरिक्त भी राज्य व्यवस्थापिकाओं की राज्य सूची के विषयों पर कानून निर्माण की शक्ति सीमित है। अनुच्छेद 304 (ख) के अनुसार कुछ विधेयक ऐसे होते हैं, जिनको राज्य विधानमण्डल में प्रस्तावित किए जाने से पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व–स्वीकृति की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, वे विधेयक, जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की दषष्टि से उस राज्य के अन्दर या उसके बाहर, वाणिज्य या मेल–जोल पर कोई प्रतिबन्ध लगाए जाने हों।

अनुच्छेद 31(ग) के अनुसार, राज्य सूची के ही कुछ विषयों पर राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा पारित विधेयक उस दशा में अमान्य होंगे, यदि उन्हें राष्ट्रपति ने विचारार्थ रोक रखा हो और उन पर राष्ट्रपति की स्वीकृति न प्राप्त कर ली गई हो। उदाहरण के लिए, किसी राज्य द्वारा सम्पत्ति के अधिग्रहण के लिए बनाए बए कानूनों का समवर्ती सूची के विषयों के बारे में ऐसे कानूनों, जो संसद में उससे पहले बनाए गए कानूनों के प्रतिकूल हों या उन पर जिनके द्वारा ऐसी वस्तुओं की खरीद और बिक्री पर लगाया जाने वाला कर हो, जिन्हें संसद ने समाज के जीवन के लिए आवश्यक घोषित कर दिया है, राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत राज्यपाल किसी भी विधेयक के बारे में अपनी सहमति देने से इन्कार कर सकता है और उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है। राष्ट्रपति बिना कोई कारण बताए विधेयकों को अस्वीकृति कर सकता है। सन् 1959 में केरल के राज्यपाल ने केरल कृषि भूमि सम्बन्धी विधेयकों को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा। इसी बीच अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत आपातकाल की घोषणा द्वारा राज्य विधानसभा को भंग कर दिया गया। नए चुनावों के बाद बनी विधानसभा ने राष्ट्रपति द्वारा किए गए सुझावों को शामिल कर कानून को सन् 1961 में पास कर दिया।

केन्द्र के द्वारा उन संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर व्यवहार में भी अपने आपको शक्तिशाली बनाने का कार्य किया गया है। उदाहरण के लिए 1954 में तृतीय संशोधन के आधार पर समवर्ती सूची के विषयों में वृद्धि की गई, जिससे कि खाद्यान्न के अभाव में उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिए केन्द्रीय सरकार आवश्यक कदम उठा सके।

राज्य सूची के विषयों पर केन्द्रीय हस्तक्षेप – राज्यों द्वारा यह भी शिकायत की गई है कि केन्द्र उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य जैसे विषयों पर कानून बनाने लग गया है, जबकि ये विषय राज्य सूची में उल्लिखित हैं। सन् 1951 में संसद ने 'उद्योग विकास एवं नियन्त्रण अधिनियम' पारित किया, जिसमें उन उद्योगों का उल्लेख किया गया, जिनको जनहित में केन्द्र द्वारा नियन्त्रित करना आवश्यक था। धीरे–धीरे अनेक उद्योगों को इस अधिनियम के अन्तर्गत ले लिया गया। इस प्रकार राज्य सूची में वर्णित 24, 26 तथा 27 संख्या वाले विषयों पर केन्द्र का अधिकार स्थापित हो गया। यही नहीं, रेजर पत्ती, कागत, गोंद, जूते, माचिस, साबुन, आदि विषयों पर भी केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण स्थापित हो गया। राज्य के नेताओं का कहना है कि इस प्रकार के अत्यधिक केन्द्रीयकरण से राज्यों का आर्थिक विकास अवरुद्ध हो गया है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में साधारणतया संघीय संसद तथा राज्यों की व्यवस्थापिकाओं के कार्यक्षेत्र संविधान द्वारा विभाजित हैं, लेकिन विशेष परिस्थितियों में संघ सरकार द्वारा सरकार के कार्यक्षेत्र का अतिक्रमण किया जा सकता है। के.वी. राव ने ठीक ही कहा है कि ''राज्य सूची में दिए गए विषय कितने महत्त्वहीन, कितने संदिग्ध और अस्पष्ट हैं।'' पायली के अनुसार ''विधायी सत्ता के वितरण की सूची योजना से निःसन्देह केन्द्रीयकरण की एक प्रबल प्रवष्त्ति प्रकट होती है।'' डॉ. महादेवप्रसाद शर्मा ने लिखा है कि ''जब राज्यों के सिर पर संघ का भय सर्वदा विद्यमान रहता है तो उनसे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वे पूर्ण विश्वास के साथ अपने अधिकारों की माँग दष्ढ़तापूर्वक करेंगे।'' अमर नन्दी ले लिखा है कि ''विशाल मूर्ति की भांति केन्द्र ही सारे रंगमंच पर छाया रहता है।''

### 2.2.5 केन्द्र–राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध (Centre-State Administrative Relations)

संघात्मक शासन की सबसे कठिन समस्या संघ तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्धों का समायोजन करना है। यदि संविधान में तत्सम्बन्धी स्पष्ट तथ्य उपलब्ध न हों तो दोनों को अपना दायित्व निभाने में कठिनाई का अनुभव होता है। इसलिए भारतीय संविधान निर्माताओं ने इस सम्बन्ध में विस्तष्त उपबन्धों की आवश्यकता अनुभव की ताकि प्रशासनिक क्षेत्र में संघ तथा राज्यों के मध्य किसी प्रकार के विवाद उत्पन्न न हों।

### प्रशासनिक सम्बन्ध : संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में (Administrative Relations : Constitutional Aspect)

भारतीय संविधान में ग्यारहवें भाग के दूसरे अध्याय में केन्द्र तथा राज्यों के बीच प्रशासनिक सम्बन्धों की चर्चा की गई है। संविधान के अनुच्छेद 73 के अनुसार केन्द्र की प्रशासनिक शक्ति उन विषयों तक सीमित है जिन पर संसद को विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 162 कें अनुसार, राज्यों की प्रशासनिक शक्तियाँ उन विषयों तक सीमित हैं, जिन पर राज्य विधानसभाओं को कानून बनाने का अधिकार है। समवर्ती सूची के विषयों में सम्बन्ध में प्रशासनिक अधिकार साधारणतया राज्यों में निहित हैं किन्तु इन विषयों पर राज्य की प्रशासनिक शक्तियाँ उन विषयों तक सीमित हैं जिन पर राज्य विधानसभाओं को कानून बनाने का अधिकार है। समवर्ती सूची के विषयों के सम्बन्ध में प्रशासनिक अधिकार साधारणतया राज्यों में निहित हैं किन्तु इन विषयों पर राज्य की प्रशासनिक शक्तियों को संघ की ऐसी प्रशासनिक शक्तियों द्वारा सीमित रखा गया है जो या तो संविधान द्वारा या संसदीय विधि द्वारा प्रदत्त हैं।

प्रशासनिक सम्बन्धों में केन्द्र को राज्यों के ऊपर नियन्त्रण रखने का अधिकार प्रदान किया गया है, किन्तु इसके बावजूद राज्यों को स्वायत्तता एवं जिम्मेदारी का बड़ा क्षेत्र मिला हुआ है। फिर भी, 'कुछ विद्वानों को महसूस होता है कि इन सम्बन्धों ने राज्यों की स्वायत्तता को कम किया है क्योंकि एक ही दल का बोलबाला है और ''राज्यों के मुकाबले एक अत्यन्त शक्तिशाली संस्था के रूप में केन्द्रीय कार्यपालिका का उदय हुआ है तथा केन्द्र को अधिक अधिकार मिल गए हैं।''

राज्यों के ऊपर संघीय नियन्त्रण की विधियाँ – संविधान के अन्तर्गत केन्द्र–राज्य प्रशासनिक सम्बन्धों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय एकता की दषष्टि से संघीय सरकार को राज्यों के सम्बन्ध में कतिपय प्रशासनिक शक्तियाँ प्राप्त हैं, जो निम्नवत् हैं–

(1) राज्यों का दायित्त्व (Obligation of the States) – संविधान के अनुसार राज्यों को अपनी कार्यपालिका शक्ति का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए, जिससे संसद द्वारा निर्मित कानूनों का पालन होता रहे। हर राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह संसद के कानूनों को अमल में लाने के लिए हर संभव उपाय काम में लाए। राज्यों का यह भी दायित्व है कि वे केन्द्रीय प्रशासन में कोई बाधा उत्पन्न न होने दें।

(2) केन्द्र सरकार राज्यों को निर्देश दे सकती है (The Centre may given directions to the States) – केन्द्र को यह अधिकार दिया गया है कि वह राज्यों को यह निर्देश दे सके कि उन्हें अपनी कार्यकारी शक्ति का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए। राष्ट्रीय व सैनिक महत्त्व के मार्गों के पुलों आदि का निर्माण साधारणतया केन्द्रीय सरकार ही करती है, परन्तु केन्द्र को यह अधिकार प्राप्त है कि इस प्रकार के मार्गों के निर्माण व उसके उचित रख–रखाव के लिए वह राज्यों को आवश्यक निर्देश दे सके। इसी प्रकार रेलमार्गों तथा रेलगाड़ियों की सुरक्षा के लिए भी निर्देश जारी किए जा सकते हैं।

(3) केन्द्र राज्यों की सरकारों का उपयोग अपने एजेण्ट के रूप में कर सकता है (The Union may Constitute States as its Agents) – राष्ट्रपति राज्यों की सरकारों अथवा उसके पदाधिकारियों को अपने एजेण्ट के रूप में कोई भी कार्य करने की जिम्मेदारी सौंप सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि संघ सूची में दिए गए किसी भी विषय में सम्बन्धित कोई भी कार्य राज्यों के पदाधिकारियों को सौंपा जा सकता है।

(4) सरकारी कृत्यों, अभिलेखों और न्यायिक कार्यवाही को पूरी मान्यता दी जाएगी (Full faith shall be given to Public Acts, Records and Judicial Proceedings) – केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार दोनों का यह कर्त्तव्य है कि वे सभी सरकारी कृत्यों का आदर करें और देश के सभी न्यायालयों द्वारा दिए बए अन्तिम निर्णयों को लागू करें।

(5) दो या दो से अधिक राज्यों में बहने वाले जलाशयों व नदियों के जल का बंटवारा (Water of Inter-State rives) – संसद का यह अधिकार है कि अन्तर्राज्यीय नदियों के बंटवारे से उत्पन्न विचार को निपटाने के लिए वह उचित कानून बनाए। संसद किसी भी नदी या नदी घाटी परियोजना के पानी के इस्तेमाल, वितरण या नियन्त्रण–सम्बन्धी विवाद के सिलसिले में मध्यस्थता की व्यवस्था कर सकती है। संसद, सर्वोच्च न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय को इस प्रकार के विवादों पर विचार करने से रोक सकती है। यह एक महत्त्वपूर्ण अधिकार है और इसका इस्तेमाल कृषि एवं औद्योगिक विकास के लिए पानी और बिजली जैसी सुविधा की व्यवस्था के लिए किया जा सकता है। साथ ही इसका उपयोग दामोदर घाटी निगम जैसी बहु–उद्देश्यीय परियोजनाओं के लिए किया जा सकता है।

(6) अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना (Establishment of an Inter-State Council) – संविधान राष्ट्रपति को अधिकार देता है कि वह एक अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना करे, जिसके निम्नलिखित तीन विशेष कार्य होंगे –

(i) राज्यों के बीच उठ खड़े होने वाले विवादों की जांच करना तथा उनके सम्बन्ध में सलाह देना।

(ii) उन विषयों पर छानबीन कर विचार करना जिनमें राज्यों की एकसमान दिलचस्पी हो।

(iii) इन विषयों, और विशेषकर इनसे सम्बन्धित नीति एवं कार्य के बेहतर समन्वय के सम्बन्ध में सिफारिशें करना। राष्ट्रपति इस परिषद् के संगठन और प्रक्रिया को निर्धारित एवं इसके कर्त्तव्यों को परिभाषित कर सकता है।

(7) अखिल भारतीय सेवाएँ (All India Services) – संघ द्वारा राज्यों को नियन्त्रित करने का एक महत्त्वपूर्ण तरीका है अखिल भारतीय सेवाएँ। यद्यपि राज्यों और केन्द्र की पष्थक् सेवाएँ और लोक सेवा आयोग है, फिर भी संविधान अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना के लिए संघ को अधिकार देता है। संघ को इन सेवाओं के सदस्यों को राज्यों के महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर रखने का अधिकार देता है।

(8) राज्यपाल (Governer) – राज्यों के राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं और एक प्रकार से वे राज्यों में केन्द्र के एजेण्ट के नाते कार्य करते हैं। उनके माध्यम से केन्द्रीय सरकार राज्यों के शासन पर अंकुश रख सकती है।

(9) संघ द्वारा दिए गए निर्देशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में असफलता का प्रभाव (Effect of failure of comply with or to given effect to directions given by the union) – संविधान के अनुच्छेद 365 के अनुसार यदि राज्य की सरकार केन्द्र के निर्देशों का पालन न करे तो राष्ट्रपति यह उद्घोषणा कर सकता है कि राज्य का संवैधानिक ढाँचा विफल हो गया है। इस घोषणा का परिणाम यह होगा कि राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो जाएगा।

राज्यों की स्वायत्तता में कमी – संक्षेप में, संविधान केन्द्रीय कार्यपालिका के प्राबल्य का प्रावधान करता है। हक्की और शर्मा की दलील है कि संघीय प्रशासनिक सम्बन्धों की क्रिया के कारण राज्यों की स्वायत्तता में इतनी कमी आ गई है कि संघीय राज्यतंत्र के सहकारी स्वरूप पर आघात पहुंचा है।

**केन्द्र–राज्य विवादास्पद क्षेत्र : कतिपय प्रशासनिक मामले (Centre-State Areas of Conflict : Administrative Aspects)**

अपने प्रारम्भिक वर्षों में भारतीय संघ व्यवस्था की प्रमुख विशेषता थी – केन्द्र राज्य सहयोग। ज्यों–ज्यों संविधान और संघ प्रणाली प्रौढ़ होती गई त्यों–त्यों उसमें दरारें दिखने लगी और आज अनेक ऐसे मुद्दे प्रशासनिक तौर से दिखाई देते हैं जहां केन्द्र और राज्यों में मतभेद की झलक मिलती है।

चतुर्थ आम चुनाव (1967) में पूर्व 'नेहरू युग' में केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध 'मधुर' कहे जा सकते हैं। इस कालावधि में देश के राजनीतिक क्षितिज पर कांग्रेस दल का एकाधिकार था और केन्द्र व राज्यों के बीच संघर्षपूर्ण स्थिति उत्पन्न नहीं हुई। केन्द्र–राज्य विवाद को 'कांग्रेस दल के अंतरंग' का मामला (Intra-Party Affair) समझा जाता था और उसका निराकरण उसी प्रकार खोज लिया जाता था जैसे किसी पारिवारिक विवाद का हल खोजते हैं। नेहरू जैसे करिश्माती व्यक्तित्व के आगे तो छोटे–मोटे विवादों का हल खोजना कोई मुश्किल भी नहीं था। किन्तु

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उस युग में मतभेद के कोई मुद्दे नहीं होते थे। हम सभी जानते हैं कि राज्यों के कतिपय शक्तिशाली मुख्यमंत्री तो कभी–कभी दबाव की भाषा में ही बात करते थे। पश्चिमी बंगाल में तात्कालिक मुख्यमंत्री डॉ. बी.सी. राय ने 'दामोदर घाटी कॉरपोरेशन' (डी.वी.सी.) के मामले पर कितना दबावपूर्ण और उग्र रूख अपनाया था? भारत में पनपी 'कांग्रेस–व्यवस्था' (Congress System) अथवा 'एक–दल प्रधान व्यवस्था' की विशेषता थी 'पशमर्श और सर्वानुमति की विधि' (Consulation-Consensus Technique) और इस विधि के माध्यम से मतभेदों का उग्र रूप धारण नहीं करने दिया जाता था। डॉ. इकबाल नारायण के शब्दों में, ऐसा लगता है मानो संघ व्यवस्था एकात्मक दलीय ढाँचे के अन्तर्गत कार्यरत थी और यह आश्चर्य की ही बात है कि इसने संघ व्यवस्था के विकास का मार्ग अवरुद्ध नहीं किया।

चतुर्थ आम चुनावों के बाद (और छठी, आठवीं, नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं एवं तेहरवीं लोकसभा एवं उसके बाद राज्य विधानसभाओं के चुनावों के बाद) भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ आया। अब संघ प्रणाली का क्रियान्वयन 'एक–दल प्रधान ढाँचे' (One-Party Dominant Framework) के बजाय 'बहुदलीय प्रतियोगी राजनीति' (Multi-Party Competitive Politics) के ढाँचे में होने लगा। चतुर्थ आम चुनावों के बाद कांग्रेस दल का एकाधिकार समाप्त हुआ और अनेक राज्यों में गैर–कांग्रेसी दलों की सरकारें बनी। ये गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार को अविश्वास और शंका की दषष्टि से देखने लगी। इसी कालावधि में कई राज्यों में क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक दलों का अभ्युदय हुआ। क्षेत्रीय दलों का ध्येय अपनी शक्ति में वषद्धि करना और केन्द्रीय सत्ता को दुर्बल करना रहा। गैर–कांग्रेस दलों के मुख्यमंत्री तो प्रायः छोटी–छोटी बातों को तूल देने लगे और केन्द्र के विरुद्ध बार–बार शिकायते प्रस्तुत करने लगे। वस्तुतः केन्द्र और राज्यों के मध्य तनाव और मतभेद के युग का सूत्रपात हुआ। संक्षेप में, केन्द्र तथा राज्यों के मध्य उठने वाले विवादास्पद प्रशासनिक मुद्दे निम्नलिखित हैं –

(1) राज्यपाल का पद – राज्यपाल राज्य का संवैधानिक कार्यकारी है। चतुर्थ आम चुनावों के बाद राज्यपालों के अधिकार–क्षेत्र, नियुक्ति के तरीके, आदि को लेकर केन्द्र–राज्य मतभेद उत्पन्न हुए। गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारें बराबर यह आरोप लगाती रही कि केन्द्र राज्यपालों के माध्यम से उनकी सरकारों को पदच्युत करने में लगा हुआ है। गैर–कांग्रेसी मुख्यमन्त्रियों का यह भी कहना था कि उनके राज्यों में राज्यपालों की नियुक्ति करते समय उनसे परामर्श किए जाने की परम्परा का केन्द्र पालन नहीं कर रहा है। कतिपय राज्यपालों ने तो सुनिश्चित लोकतान्त्रिक अभिसमयों का भी पालन नहीं किया और ऐसा आभास मिलता था कि उन्होंने केन्द्रीय सरकार के एजेण्ट की भूमिका का निर्वाह करने में भी अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली। राज्यपाल धर्मवीर की भूमिका को लेकर पश्चिमी बंगाल और केन्द्रीय सरकार के मध्य विवाद इतना उग्र हो गया कि अन्ततः राज्यपाल को स्थानान्तरित ही करना पड़ा। आन्ध्र प्रदेश के तात्कालिक राज्यपाल रामलाल ने एन.टी. रामाराव की तेलगुदेशम सरकार (1984) को बर्खास्त करके राज्यपाल पद को अत्यन्त हास्यास्पद बना दिया, जबकि विधानसभा में रामाराव को स्पष्ट बहुमत प्राप्त था। समूचे आन्ध्र प्रदेश में राज्यपाल और केन्द्र के खिलाफ जनआक्रोश जब अपनी चरम सीमा पर पहुंचा तो रामाराव की सरकार को पुनः पदासीन करना पड़ा और राज्यपाल को बेआबरू होकर हटना पड़ा। तमिलनाडु के राज्यपाल डॉ. चन्ना रेड्डी तथा मुख्यमन्त्री सुश्री जयललिता के सम्बन्धों में इतनी कड़वाहट आ गई कि तमिलनाडु विधानसभा ने राज्यपाल डॉ. रेड्डी को हटाने के लिए प्रस्ताव पारित कर दिया। लोकतान्त्रिक मान्यताओं, परम्पराओं और संवैधानिक मर्यादाओं का, राज्यपाल रोमेश भण्डारी ने (21 फरवरी 1998) उत्तर प्रदेश की कल्याण सिंह सरकार को उसे अपना बहुमत सिद्ध करने का मौका दिए बिना ही बर्खास्त करके जो मखौल बनाया था, उस पर अंतरिम–स्थगनादेश देकर

तथा कल्याण सिंह सरकार को तत्काल बहाल करने का निर्देश देकर इलाहाबाद हाईकोर्ट की खण्डपीठ ने लोकतान्त्रिक व्यवस्था को बनाये रखने का ऐतिहासिक कार्य किया। भाजपा से तात्कालिक केन्द्रीय सरकार की नाराजगी हो सकती है, लेकिन राजनीतिक लड़ाई राज्यपाल को माध्यम बनाकर लड़ना लोकतान्त्रिक आदर्शों के सर्वथा प्रतिकूल था। खण्डपीठ का फैसला राज्यपाल रोमेश भण्डारी के गाल पर करारा तमाचा था और इसके बाद उनके पास अपने पद पर बने रहने का कोई अधिकार शेष नहीं बचा। राज्य विधानसभा में शक्ति परीक्षण में कल्याण सिंह की जीत के बाद भी भण्डारी 15 मार्च, 1998 तक निर्लज्जता से अपने पद पर बने रहे। 30 जून 2001 को तमिलनाडु में पूर्व मुख्यमंत्री करुणानिधि और दो केन्द्रीय मंत्रियों – मुरासोली मारन और टी.आर. बालू की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में राज्यपाल फातिमा बीवी द्वारा समय पर और निष्पक्ष रिपोर्ट न भेजने पर बर्खास्तगी के भय से तत्काल त्याग–पत्र दे देना राज्यपाल की भूमिका को विवादास्पद बना देता है।

(2) नौकरशाही – नौकरशाही दूसरा प्रशासनिक विषय है जिस पर केन्द्र तथा राज्यों के बीच मतभेद दिखलाई देते हैं। भारत में अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से संघ सरकार राज्यों पर नियन्त्रण रखती है। संविधान में संघ तथा राज्य सरकारों के लिए अलग–अलग सेवाओं की व्यवस्था की गई है, परन्तु ब्रिटिश शासन से विरासत में हमने एकीकृत उच्च प्रशासनिक सेवाओं की पद्धति भी प्राप्त की है, तदनुसार अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारी संघ और राज्य दोनों जगह कार्य करते हैं। संविधान में यह व्यवस्था है कि भारतीय प्रशासनिक सेवाओं और भारतीय पुलिस सेवा संघ और राज्यों में समान रूप से कार्य करेंगी। चतुर्थ आम चुनाव के बाद नौकरशाही के सम्बन्ध में दो प्रश्न सामने आए: पहला प्रश्न यह था कि क्या नौकरशाही गैर–कांग्रेस राज्य सरकारों की नीतियों का क्रियान्वयन उसी उत्साह तथा प्रतिबद्धता से कर पाएगी, जिस उत्साह से वह अब तक कांग्रेस सरकार की नीतियों का क्रियान्वयन करती थी। यह प्रश्न वस्तुतः सरकारी कर्मचारियों की तटस्थता से जुड़ा हुआ है। कतिपय लोगों के मन में यह धारणा थी कि तीस वर्षों तक कांग्रेस दल के कार्यक्रमों और नीतियों को कार्यान्वित करने वाली नौकरशाही तमिलनाडु में द्रमुक–अन्ना द्रमुक, केरल में साम्यवादी दल, पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी–साम्यवादी दल और पंजाब में अकाली दल की नीतियों और कार्यक्रमों का सहजता से कैसे क्रियान्वयन कर पाएगी? दूसरा सवाल नई अखिल भारतीय सेवाओं के गठन से सम्बन्धित था। कुछ गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारों ने कहा कि अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारी केन्द्रीय सरकार के एजेण्ट होते हैं तथा वे राज्य की नीतियों को ठीक ढंग से लागू नहीं करते हैं। कई राज्यों में निम्नलिखित कारणों से अखिल भारतीय सेवाएं राज्यों की स्वायत्तता को कम करती हैं। तष्तीय, अखिल भारतीय सेवाएं केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में कटुता बढ़ाने का कारण इसलिए बन जाती है क्योंकि उनकी नियुक्ति और पदोन्नति अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के मामलों पर केन्द्रीय सरकार पर निर्भर करती है और राज्यों में उनके प्रति अपनत्व की भावना नहीं दिखलाई देती है।

करुणानिधि, मारन एवं बालू की गिरफ्तारी (30 जून, 2001) प्रकरण से जुड़े चेन्नई पुंलिस आयुक्त के. मुथुकुरुमन, मध्य चेन्नई के संयुक्त पुलिस आयुक्त सी. जार्ज और त्रिप्लीकेन के पुलिस आयुक्त क्रिस्टोफर नेल्सन को केन्द्र ने केन्द्रीय कैडर में तबादला करने के निर्देश दिए हैं, जबकि तमिलनाडु सरकार का मत है कि राज्य सरकार की स्वीकृति के बिना इन अधिकारियों का तबादला नहीं किया जा सकता। इससे केन्द्र–राज्य विवाद बढ़ने की आशंका है।

(3) कानून और व्यवस्था के मामलों पर राज्यों को केन्द्रीय निर्देश –क्या राज्य सरकारों के लिए केन्द्रीय सरकार के लिए केन्द्रीय सरकार के निर्देशों का पालन करना बाध्यकारी है? यदि राज्य सरकारें संघीय निर्देशों का

पालन न करें तो क्या व्यवस्था होगी? यह एक विचारणीय प्रश्न है कि जब राज्य सीमा के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार की सम्पत्ति की सुरक्षा राज्य सरकारें न कर सकें तो कन्द्रीय सरकार क्या करे? जब राष्ट्रीय सम्पत्ति की रक्षा के लिए केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को कतिपय राज्यों में तैनात किया तो केरल, पश्चिमी बंगाल और तमिलनाडु की सरकारों ने केन्द्र की इस शक्ति पर आपत्ति उठाई और इससे केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों में कुटता आई। 18 सितम्बर 1968 को केन्द्रीय कर्मचारियों की हड़ताल का सामना करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने राज्यों को एक अध्यादेश द्वारा वांछित निर्देश प्रदान किए। केरल की साम्यवादी सरकार ने केन्द्रीय अध्यादेश को संविधान विरोधी और श्रमिक विरोधी कहकर उसे मानने से इन्कार कर दिया। ऐसी गम्भीर स्थिति में जब राज्य में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस तैनात की गई तो केन्द्र–राज्य सम्बन्ध का उग्रतम रूप उभरने लगा। मुख्यमंत्री नम्बूदरीपाद ने आरोप लगाया कि राज्य में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस का आगमन राज्य के आन्तरिक मामलों में सरासर हस्तक्षेप है। वस्तुतः केन्द्र का यह संवैधानिक अधिकार है कि वह कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के लिए, सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए, केन्द्रीय प्रतिष्ठानों की रक्षा के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस राज्यों में तैनात करें, किन्तु वे राज्य सरकारें जो केन्द्र में सत्तारूढ़ दल से मेल नहीं खाती, इसे राज्य के आन्तरिक मामलों में अनुचित हस्तक्षेप कहकर केन्द्र–राज्य में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर देती हैं।

(4) आर्थिक नियोजन – के. सन्थानम् के अनुसार, नियोजन व्यवस्था ने नीति और वित्त सम्बन्धी सभी मामलों में राज्यों की स्वायत्तता को एक छाया का रूप प्रदान कर दिया है। वस्तुतः नियोजन का संघवाद पर जो प्रभाव पड़ा है, उसने केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन दिया है। भारत में सम्पूर्ण देश–केन्द्र एवं राज्यों के लिए योजना निर्माण का कार्य योजना आयोग करता है। यह एक केन्द्रीय अभिकरण है जिसका निर्माण केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के एक प्रस्ताव के आधार पर हुआ है। इसमें प्रधानमंत्री, कुछ केन्द्रीय मंत्री तथा विशेषज्ञ होते हैं। इसमें राज्यों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। यह नीतियों की एकरूपता पर बल देता है। यह आयोग समूचे देश के लिए यह मानकर योजना बनाता है कि मोटे तौर से सभी राज्यों की परिस्थितियां समान है। नियोजन का सम्बन्ध शासन के समस्त विषयों से है, चाहे वह विषय संघ सूची का हो अथवा राज्य सूची का। राज्य सूची के विषयों पर भी योजना आयोग एक 'सुपरमैन' बन गया है। नियोजन के परिणामस्वरूप ही केन्द्र उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य जैसे विषयों पर कानून बनाने लग गया, जबकि ये विषय राज्य सूची में उल्लिखित हैं। यही नहीं, आज रेजर पत्ती, कागज, गोंद, माचिस, साबुन जैसे विषयों पर भी केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण स्थापित हो गया है।

बदले राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में यह देखा गया है कि अब राज्य योजना आयोग तथा केन्द्रीय सरकार के निर्णयों को ज्यों–का–त्यों स्वीकार नहीं कर लेते हैं। इस बात का अभ्यास 19 व 20 अप्रैल, 1969 को दिल्ली में हुई राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक से मिलता है। राष्ट्रीय विकास परिषद् के इतिहास में पहली बार कुछ राज्यों ने चौथी योजना के प्रारूप को औपचारिक रूप से अस्वीकृति प्रदान की। पश्चिमी बंगाल तथा केरल के मुख्यमंत्री और दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद् ने योजना को उसी रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। वस्तुतः अब अनेक राज्यों में केन्द्र की सरकार गठित करने वाले दलों से भिन्न दलों की सरकारें होने के कारण हाँ में हाँ मिलाने की प्रवृत्ति नहीं रही और आर्थिक नियोजन विवादास्पद मसला बनता जा रहा है।

## केन्द्र–राज्य प्रशासनिक समायोजन के उपकरण (Instruments of Centre-State Administrative Co-Ordination)

केन्द्र और राज्यों के मध्य विचार–विमर्श आवश्यक ही नहीं, वांछनीय भी है। ऐसा करने से एक संघ व्यवस्था में

केन्द्र–राज्यों के बीच साझेदारी की भावना बढ़ती है और सद्भाव के साथ कार्य करने के लिए निर्णय प्रक्रिया के 'आगत' (इनपुट) भी बढ़ते हैं। यद्यपि भारत के संविधान ने केन्द्रीय सरकार पर बहुत सारे कार्यों का भारी भार डाला है, फिर भी राष्ट्र निर्माण के सभी महत्वपूर्ण कार्यों में जैसे – कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा शान्ति व्यवस्था, आदि में केन्द्र सरकार राज्यों सरकारों पर गम्भीर रूप से निर्भर रहती है। इस सम्बन्ध में क्योंकि केन्द्र के निर्देश राज्यों के लिए बाध्यकारी नहीं हो सकते, अतः यह आवश्यक है कि केन्द्र और राज्यों के बीच विचार–विमर्श के यन्त्र विकसित किए जाएं। संविधान की समवर्ती सूची में ऐसे 47 विषयों का उल्लेख है, जिन पर केन्द्र और राज्य दोनों ही कानून बना सकते हैं। इस सूची के विषयों पर प्रशासन में केन्द्र और राज्यों के मध्य परामर्श का क्षेत्र और भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है।

भारत में केन्द्र–राज्य प्रशासनिक समायोजन की दृष्टि से राज्यपाल सम्मेलन, राष्ट्रीय विकास परिषद्, मुख्यमंत्री सम्मेलन, मुख्य सचिव सम्मेलन, पुलिस महानिदेश सम्मेलन, आदि महत्वपूर्ण हैं। उपर्युक्त में से प्रथम तीन राजनीतिक स्तर पर कार्य कर रहे हैं। प्रशासनिक स्तर पर जो सम्मेलन महत्वपूर्ण हैं उनमें मुख्य सचिवों का सम्मेलन तथा विभिन्न कार्यकारी सचिवों के सम्मेलन उल्लेखनीय हैं। 1990 में अन्तर्राज्यीय परिषद् का भी गठन किया गया है।

फिर भी भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में ऐसे परामर्श यंत्रों का विकास का एक नया प्रयोग है। यह अभी असन्तुलित और अविकसित है। उनका प्रयोग अधिकतर उन्हीं विषयों के लिए हुआ है, जो राज्य सूची में हैं। स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि केन्द्र ने अपने निर्णयों को राज्यों द्वारा मनवाने के लिए ही इसका प्रयोग किया है।

### निष्कर्ष : प्रशासनिक संघ का स्वरूप

भारतीय संघ व्यवस्था में प्रशासनिक एकरूपता पर बल दिया गया है। अमरीका की तरह दोहरी न्याय व्यवस्था का प्रबन्ध करने के स्थान पर न्याय व्यवस्था को एकीकृत कर दिया गया है। अखिल भारतीय प्रशासनिक और पुलिस सेवाओं का प्रावधान किया गया है। भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के अधीन भारत की लेखा परीक्षा तथा लेखा सेवा का आयेजन है, जो एक केन्द्रीय सेवा है, किन्तु यह संघ के साथ–साथ राज्यों के व्यय का लेखा तथा परीक्षा कार्य को भी सम्पन्न करती है। निर्वाचन आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और आयोग संसद के साथ–साथ राज्य विधानमण्डलों के निर्वाचनों को भी सम्पन्न करता है। संघ और राज्यों के बीच अथवा दो या दो से अधिक राज्यों के बीच विवादों का निपटारा करने के लिए संघ की स्थिति महत्त्वपूर्ण हैं। केन्द्रीय सरकार के पास समन्वयकारी शक्तियाँ हैं और क्षेत्रीय परिषदों के माध्यम से केन्द्र राज्य सरकारों की शक्तियों पर नियन्त्रण रखता है। संकटकालीन शक्तियों के प्रवर्तन काल में केन्द्रीय शासन को राज्यों पर सभी प्रकार के प्रशासनिक नियन्त्रण प्राप्त हो जाते हैं। इसी कारण नारमन डी. पामर ने भारतीय संघ व्यवस्था को प्रशासनिक संघ कहकर पुकारा है।

केन्द्रीकरण की विद्यमान प्रवृत्ति के बावजूद भी प्रशासनिक स्वरूप वाले भारतीय संघ के घटक राज्यों के हाथों में देश के शासन का आज भी बहुत बड़ा भाग है। यद्यपि उन्हें आर्थिक संसाधनों के लिए केन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है और विकास कार्यों का संयोजन भी केन्द्र करता है, फिर भी राज्यों में अपने अधिकारों पर जोर देने की प्रवृत्ति बढ़ी है और देश के शासन में वे ज्यादा हाथ चाहते हैं। भारत में सरकारी नीतियों और विकास कार्यक्रमों को अमल में लाने का काम राज्य शासन का ही है। पाल.एच. एपिलबी ने ठीक ही लिखा है भारतीय शासन–व्यवस्था ऐसी है कि इसमें प्रशासन के महत्वपूर्ण कार्य राज्य सरकारें करती हैं और योजनाओं की क्रियान्विति के लिए केन्द्र को उन्हीं पर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में राज्य की आर्थिक स्वायत्तता के समर्थकों का यह कहना कहाँ तक सार्थक है कि हमारे राज्य प्रशासनिक दृष्टि से केन्द्रीय सरकार के अनुचर मात्र हैं? हाँ, यदि राज्यों के वित्तीय संसाधनों में वृद्धि के उपाए

किए जाते हैं तो निश्चित ही उनकी प्रशासनिक क्षमता में वृद्धि होगी। वस्तुतः राष्ट्रीय एकता और तीव्र विकास के लिए शक्तिशाली केन्द्र और समृद्ध राज्यों के संघीय ढाँचे का होना ही लाभकारी है। राज्यों को महसूस करना चाहिए कि दुर्बल केन्द्र का सिद्धान्त राजनीतिक दृष्टि से आत्महत्या का समतुल्य होगा। यदि शक्ति का सन्तुलन राज्यों की तरफ झुकता है तो राष्ट्रीय शक्ति का ह्रास होगा, जिससे भारी राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति शून्य उभरेगा।

### 2.2.6 केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्ध (Financial Relations)

संघात्मक शासन–व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों की सरकारों के बीच केवल विधायी और प्रशासनिक शक्तियों का ही विभाजन नहीं होता अपितु वित्तीय स्रोतों का भी बंटवारा होता है। वित्तीय स्रोतों के विभाजन को लेकर राज्यों के बीच मतभेद और तनाव उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। यह समस्या उतनी ही पुरानी है जितनी कि संघात्मक शासन प्रणाली और यह विश्व की अधिकांश संघ व्यवस्थाओं को संकटग्रस्त करती रही है।

### केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्ध : संवैधानिक प्रावधान

केन्द्र तथा राज्यों के मध्य राजस्व के साधनों के विभाजन के आधारभूत सिद्धांत हैं : कार्यक्षमता, पर्याप्तता तथा उपयुक्तता। इन तीनों उद्देश्यों की एक साथ ही प्राप्ति अत्यन्त कठिन थी, अतः भारतीय संविधान में समझौते की चेष्टा की गई। संविधान द्वारा केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों का निरूपण निम्न प्रकार किया गया है :

(1) कर निर्धारण, शक्ति का वितरण और करों से प्राप्त आय का विभाजन – भारतीय संविधान में वित्तीय प्रावधानों की दो विशेषताएँ हैं। प्रथम, संघ तथा राज्यों के मध्य कर निर्धारण की शक्ति का पूर्ण विभाजन कर दिया गया है और द्वितीय, करों से प्राप्त आय का बंटवारा होता है।

संघ के प्रमुख राजस्व स्रोत इस प्रकार हैं : निगम कर, सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क, कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं और नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय कर, वाहनों पर चुंगी कर, आदि।

संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत, किन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले करों के उदाहरण : बिल, विनियमों, प्रोमिसरी नोटों, हुण्डियों, चैंको, आदि पर मुद्रांक शुल्क और दवा तथा मादक द्रव्य पर कर, शौंक–श्रृंगार की चीजों पर कर तथा उत्पादन शुल्क।

संघ तथा अरोपित तथा संग्रहित, किन्तु राज्यों को सौपेन जाने वाले करों के उदाहरण हैं : कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर, कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, रेल, समुद्र, वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर, रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ों पर कर, शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान–प्रदान पर कर, मुद्रांक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार–पत्रों के क्रय–विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किए गए विज्ञापनों पर और समाचार–पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य के माल के क्रय–विक्रय पर कर।

कतिपय कर संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत किए जाते हैं, पर उनका विभाजन संघ तथा राज्यों के बीच होता है। आय–कर का विभाजन संघीय भू–भाग के लिए निर्धारित निधि तथा संघीय खर्च को काटकर शेष राशि में से किया जाता है। आय–कर के अतिरिक्त दवा तथा शौंक–श्रृंगार चीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पादन शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

(2) सहायक अनुदान तथा अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए दिया जाने वाला अनुदान – संविधान के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा राज्यों को चार तरह से सहायता अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। प्रथम, पटसन व

उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है, उसमें से कुछ भाग अनुदान के रूप में जूट पैदा करने वाले राज्यों – बिहार, बंगाल, असम व उड़ीसा – को दे दिया जाता है। द्वितीय, बाढ़, भूकम्प व सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पीड़ितों की सहायता के लिए भी योजनाओं के लिए भी सहायक अनुदान दिया जाता है। चतुर्थ, राज्य को आर्थिक कठिनाईयों से उबारने के लिए केन्द्र राज्यों की वित्तीय सहायता कर सकता है।

(3) ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध – संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संचित निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋण ले सके। ऋण लेने का अधिकार राज्यों को प्राप्त होता है, परन्तु वे विदेशों से धन उधार नहीं ले सकते। यदि किसी राज्य सरकार पर संघ सरकार का कोई कर्ज बाकी है तो राज्य सरकार अन्य कर्ज संघ सरकार की अनुमति से ही ले सकती है। इस प्रकार का कर्ज समय संघ सरकार किसी भी प्रकार की शर्त लगा सकती है।

(4) करों से विमुक्ति – राज्यों द्वारा संघ की सम्पत्ति पर कोई कर तब तक नहीं लगाया जा सकता, जब तक संसद विधि द्वारा कोई प्रावधान न कर दे। भारत सरकार या रेलवे द्वारा प्रयोग में आने वाली बिजली पर संसद की अनुमति के अभाव में राज्य किसी प्रकार का शुल्क नहीं लगा सकते। इसी प्रकार संघ सरकार भी राज्य सम्पत्ति और आय पर कर नहीं लगा सकती।

(5) भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक द्वारा नियन्त्रण – भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के परामर्श से राष्ट्रपति करता है। यह भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के हिसाब का लेखा रखने के ढंग और उनकी निष्पक्ष रूप से जांच करता है। नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संघ राज्य की आय पर अपना नियन्त्रण करती है।

(6) वित्तीय संकटकाल – वित्तीय संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्यों में आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान, आदि संघ के करों की आय में भाग बंटाने में सम्बन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों का निर्देश भी दे सकती है।

निष्कर्षतः यह कहना उचित है कि भारतीय संघवाद की सामान्य प्रकृति अर्थात् 'केन्द्रीयता' के अनुकूल की उपबन्धों की योजना हुई है। केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों की अपेक्षा वित्तीय क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली है। प्रो. एम. वी. पायली के शब्दों में, "वर्तमान स्थिति में राज्यों के पास सीमित साधन हैं और अपनी अधिकांश विकास योजनाओं के लिए उन्हें केन्द्र की सहायता की आवश्यकता रहती है इसलिए उन्हें केन्द्र का नेतष्त्व स्वीकार करना पड़ता है। कभी–कभी केन्द्र के आदेशों के आगे भी झुकना पड़ता है।"

## केन्द्र–राज्य तनाव क्षेत्र : वित्तीय तथा योजना सम्बन्धी विषय (Areas of Conflict : Financial Aspects)

सैद्धान्तिक दृष्टि से केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विवादों को तीन भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम, संस्थागत विषय जैसे राज्यपाल का पद, नौकरशाही की भूमिका और संविधान का स्वरूप, आदि विषयों को लेकर उत्पन्न होने वाले विवाद। द्वितीय, कार्यात्मक विषय जैसे कानून और व्यवस्था के अधिकार–क्षेत्र के प्रश्न पर विवाद, अन्तर्राज्यीय विवाद, भाषा विवाद, राज्य सूची के विषयों पर केन्द्रीय हस्तक्षेप, आवश्यक वस्तुओं पर केन्द्रीय नियन्त्रण, आदि मसले। तृतीय, वित्तीय और योजना सम्बन्धी विषय – संघीय शासन–व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों के मध्य वित्तीय और योजना सम्बन्धी प्रश्नों को लेकर मतभेद होना स्वाभाविक है। 1967 के चतुर्थ आम चुनावों के बाद भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच निम्नलिखित वित्तीय और योजना सम्बन्धी विषयों को लेकर विवाद उभरे हैं :

**(i)** **वित्तीय संसाधनों के वितरण की प्रचलित व्यवस्था**– वर्तमान में वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा वित्तीय संसाधनों के वितरण की प्रचलित व्यवस्था से अधिकांश राज्य सन्तुष्ट नहीं है। प्रचलित व्यवस्था में करों से प्राप्त होने वाली आय का प्रधान भाग केन्द्रीय कोष में जाता है और अपने लोककल्याण एवं जनविकास सम्बन्धी दायित्वों की वृद्धि के बावजूद भी राज्यों की आय के स्रोत अत्यन्त अल्प रखे गए हैं। इसके परिणामस्वरूप राज्यों की योजनाओं की सफलता बहुत कुछ केन्द्रीय अनुदान पर भी निर्भर हो जाती है। सन् 1967 के बाद राज्यों की यह शिकायत रही है कि केन्द्र की सरकार उन राज्यों को अधिक मदद देती हैं जहाँ राज्य सरकारें उसके अनुकूल हैं। योजना आयोग के माध्यम से भी केन्द्र राज्यों पर न केवल नियन्त्रण रखता है बल्कि भेदभाव भी बरतता है।

इसके अतिरिक्त, राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान एवं सहायता बहुत ही कम हैं और वे अपने बढ़ते हुए दायित्वों का निर्वाह करने में असमर्थ हैं। राज्यों की योजना की आकृति तय करने का कोई निश्चित मापदण्ड नहीं हैं और वे राज्य, जिनकी आय के स्रोत ज्यादा हैं, महत्त्वाकांक्षी योजनाओं का निर्माण कर लेते हैं जिससे राज्यों की आय में विषमता बढ़ती है। केन्द्रीय सरकार को आए दिन अपने कर्मचारियों के महंगाई भत्तों में वषद्धि करनी पड़ जाती है। राज्यों को दिए जाने वाले कतिपय अनुदान केन्द्रीय सरकार की स्वविवेकी शक्ति के अन्तर्गत आते हैं और राज्यों को बराबर यह शिकायत रही है कि केन्द्रीय सरकार इन अनुदानों का वितरण करते समय पक्षपातपूर्ण आचरण करती है।

**(ii)** **राज्यों की ऋणग्रस्तता**– पिछले तीस वर्षों में राज्य धीरे–धीरे, किन्तु अधिकाधिक रूप से वित्तीय साधनों के लिए केन्द्रीय सरकार पर निर्भर होते चले गए। राज्यों की इस ऋणग्रस्तता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि सभी राज्य सरकारों का कुल कर्ज तीन साल पहले 2,42,525 करोड़ रूपये का था, जो 1999–2000 में 4,09,258 करोड़ रूपये का हो गया। यानि प्रत्येक व्यक्ति 4,308 रूपये कर्ज में डूबा हुआ है। इस प्रकार ऋण सेवाओं का भार राज्यों की कर आय को प्रभावहीन बना रहा है। वास्तव में, केन्द्र के राज्यों की ऋणग्रस्तता अब इस स्थिति में पहुंच गई है कि ऋण अदायगी तथा ब्याज की रकम मिलकर नई केन्द्रीय सहायता से अधिक हो जाती है, जिसका अर्थ यह है कि साधनों का वितरण विपरीत दिशा में हो जाता है। ऐसी स्थिति परिपक्व एवं सन्तुलित केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के लिए ऋणात्मक है।

**(iii)** **वित्त आयोग की भूमिका**– आलोचना का विषय यह भी है कि केन्द्र से हस्तान्तरित होने वाली राशि का केवल एक–तिहाई भाग ही वित्त आयोग की सिफारिशों पर होता है, जबकि दो–तिहाई भाग वित्त आयोग के क्षेत्र से बाहर है। बंटवारे की यह पद्धति मनमाने ढंग की है, चाहे वह बंटवारा योजना आयोग द्वारा ही क्यों न किया जाता हो? फिर केवल योजना आयोग ही ऐसे अनुदान नहीं देता। वित्त आयोग तथा योजना आयोग के क्षेत्र से बाहर के अनुदान प्रथम पंचवर्षीय योजना में दिए अनुदानों का केवल 7.3 प्रतिशत थे, किन्तु बाद की पंचवर्षीय योजनाओं में इनका महत्व बढ़ता गया तथा चौथी योजना में वह बढ़कर लगभग 41 प्रतिशत हो गया। ये अनुदान जिन्हें विवेकानुदान कहा जाता है, योजना अनुदानों की अपेक्षा 73 प्रतिशत बढ़ गए। सरकार की इच्छा पर छोड़े गए इन अनुदानों के विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि ये वित्तीय संघीय सम्बन्धों में न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन करते हैं। सभी मुख्यमंत्रियों ने सातवें वित्त आयोग के समक्ष अनुच्छेद 282 के अत्यधिक प्रयोग पर जिसके अन्तर्गत ये विवेकानुदान दिए जाते हैं, पुनः विचार करने को कहा।

**(iv)** **आर्थिक नियोजन के सम्बन्ध में मतभेद**– योजना आयोग की भूमिका को लेकर भी केन्द्र–राज्य विवादों में वषद्धि हुई है। अशोक चन्दा का मत है कि योजना आयोग ने संघवाद को निरस्त कर दिया है। योजना आयोग

देश की योजना के लिए कुछ आधारभूत विषय निश्चित करता है। चूंकि प्रत्येक राज्य की समस्याएं अलग–अलग हैं इसलिए उनकी मूल समस्याओं का निराकरण नहीं हो पाता है। योजना प्रारूप का अन्ति निर्णय तो केन्द्रीय संसद के हाथों में है। योजनाओं के सम्बन्ध में केन्द्र की कार्यपालिका वास्तव में निर्णय लेती है और कार्यान्वित राज्य की कार्यपालिकाओं को करना होता है। योजना आयोग के सामने राज्य एक परकटे पक्षी की भांति है। राज्यों के पास अपने योजना बोर्ड नहीं है, जो कि राज्य की योजनाओं को तकनीकी दृष्टि से निश्चित कर सकें।

अब राज्य सरकारों में केन्द्रीय सरकार और योजना आयोग का विरोध करने की प्रवृत्ति उभर रही है। सन् 1969 में पहली बार कुछ राज्यों ने चौथी योजना के प्रारूप को अनौपचारिक रूप से अस्वीकृति प्रदान की। पश्चिमी बंगाल तथा केरल के मुख्यमंत्री और दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद् ने योजना को उसी रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। राज्य के मुख्यमन्त्रियों ने केन्द्र से राज्यों की आय की स्रोतों को भी बढ़ावा देने की बात कही है। यह भी मांग की जा रही है कि योजना आयोग के कार्यों को सीमित किया जाना चाहिए तथा जो अनुदान दिए जाएं वे सशर्त नहीं होने चाहिए।

(v) **अन्तर्राज्यीय व्यापार**– संविधान के अनुसार अन्तर्राज्यीय व्यापार को नियमन करने की शक्ति केन्द्रीय सरकार में निहित है। केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय और स्थानीय राज्यों के हितों में समन्वय स्थापित करने के लिए कभी–कभी हस्तक्षेप करती है। इस केन्द्रीय हस्तक्षेप से कतिपय राज्य नाराज होते हैं और केन्द्र–राज्य मतभेद उभरते हैं। उदाहरण के लिए, खाद्य नीति को लिया जा सकता है जो कि राज्य सूची का विषय है और केन्द्रीय हस्तक्षेप से पंजाब ने अपनी लगातार नाराजगी प्रकट की। सन् 1969 में केन्द्रीय शासन ने गेहूँ के सम्बन्ध में प्रचलित 'एक राज्य क्षेत्र' नीति का परित्याग कर 'आठ राज्यीय क्षेत्र' घोषित किया तो पंजाब ने इसे पसन्द नहीं किया।

मई 1979 में मुख्यमन्त्रियों के दो दिन के सम्मेलन में केन्द्र के वित्तीय साधनों के बंटवारे के सवाल पर विवाद ने उग्र रूप धारण कर लिया। विवाद इतना बढ़ गया जिसका पता इसी तथ्य से लग जाता है कि पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री ने इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय के सामने ले जाने का निश्चय प्रकट किया। पश्चिमी बंगाल के वित्त मन्त्री डॉ० अशोक मित्र ने कहा कि कच्ची तम्बाकू, चीनी तथा कपड़ों पर एकत्र करों के बंटवारे के प्रश्न पर अनेक स्मरण–पत्र भेजने के बावजूद केन्द्र ने अपना वायदा पूरा नहीं किया। उन्होंने कहा था कि कुछ वर्ष पूर्व उक्त मदों पर एकत्र करों को राज्य सरकार ने स्वेच्छा से केन्द्र को दे दिया था। यदि मामला वार्ता से न सुलझा तो राज्य सरकार सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमा दायर करेगी।

(1) राज्य सरकारों ने कुछ संसाधनों को विभाज्य पुल से बाहर रखने के सम्बन्ध में संघ सरकार की नीति की आलोचना की है, जो उनके मतानुसार उनके साथ बांटे जाने चाहिए थे। राज्यों के अनुसार इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, आयकर अधिनियम, 1959 के संशोधन द्वारा निगम कर को विभाज्य पुल से निकालना। बहुत–सी राज्य सरकारों ने यह सुझाव दिया है कि निगम कर की प्राप्तियों में राज्यों की भागीदारी रहनी चाहिए।

(2) राज्यों ने यह शिकायत की है कि आयकर अधिभार के एक लम्बी अवधि तक जारी रहने के कारण वे काफी राजस्व से वंचित रहे हैं जो राज्यों के साथ भागीदारी योग्य होता यदि भारत सरकार ने इसके बजाय आयकर की मूल दरों को समायोजित किया होता। कुछ राज्यों ने सुझाव दिया है कि आयकर अधिभार की प्राप्तियां राज्यों के साथ भागीदारी योग्य बना दी जानी चाहिए।

(3) कुछ राज्यों ने आरोप लगाया है कि संघ सरकार आयकर से राजस्व जुटाने में पर्याप्त रूचि नहीं दिखा रही है, जिसका 85 प्रतिशत इस समय राज्यों के साथ भागीदारी योग्य है। दूसरी ओर, विशेष वाहक पत्र योजना के माध्यम से संघ सरकार ने केवल अपने इस्तेमाल के लिए संसाधन जुटाये हैं जिनमें अन्यथा प्रकार से राज्यों की भागीदारी होती, यदि आयकर अधिनियम को बेहतर ढंग से लागू किया जाता।

(4) अनेक राज्यों ने संघ द्वारा उत्पाद शुल्क बढ़ाने की बजाय, जो उनके साथ भागीदारी योग्य होने, एकपक्षीय रूप से पेट्रोलियम और कोयला जैसी वस्तुओं के निर्देशित मूल्य में वृद्धि की शिकायत की है।

(5) अनेक राज्यों ने संविधान (छठा संशोधन) अधिनियम, 1956 द्वारा अनुच्छेद 269 और 286 में हुए परिवर्तनों तथा केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 कर ओर ध्यान दिलाया है। उनका आरोप है कि इन संशोधनों ने राज्यों के विक्रय कर की प्राप्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है जो कि उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजस्व का स्रोत है।

(6) वेतन में संशोधन, सेवान्त प्रसुविधाएं, महंगाई भत्ते की किस्तों के दिए जाने, इत्यादि पर संघ सरकार के निर्णयों के कारण राज्यों पर उसके अनुरूप भार पड़ता है। इसे, संघ की कार्यवाही के कारण राज्यों के व्यय पर अनिश्चित भार के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया गया है। कुछ राज्य सरकारों ने कहा है कि इस अतिरिक्त भार में संघ द्वारा हिस्सेदारी की जानी चाहिए।

(7) प्राकृतिक आपदाओं के लिए सहायता प्रदान किए जाने में विलम्ब, अपर्याप्तता और साथ ही भेदभाव बरतने की शिकायतें भी हैं जिन पर राष्ट्रीय महत्व के विषय के रूप में विचार किए जाने की आवश्यकता है।

वित्तीय साधनों का न्यायपूर्ण आबंटन : नए सन्तुलन की खोज – केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों को अधिक सहज बनाने हेतु प्रशासनिक सुधार आयोग तथा राजमन्नार समिति प्रतिवेदन में भी विचार किया गया था। इस उद्देश्य से पश्चिमी बंगाल की मार्क्सवादी सरकार ने भी एक विस्तष्त मसविदा (Memorandum) प्रस्तुत किया था।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने अनुच्छेद 283 के अन्तर्गत राज्यों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता का सरलतम रूप प्रस्तुत किया। इस सम्बन्ध में आयोग की अनुशंसाएं इस प्रकार हैं : प्रथम, राज्यों को दी जाने वाली कुल केन्द्रीय सहायता की मात्रा तय की जानी चाहिए। इसके बाद ऋण के रूप में दी जाने वाली रकम तय कर लेनी चाहिए। द्वितीय, इस अनुदान को वितरित करते समय यह राशि अलग कर लेनी चाहिए जो मूलभूत राष्ट्रीय महत्व की परियोजनाओं पर खर्च की जानी है। अवशिष्ट राशि को ही केन्द्रीय अनुदान के रूप में राज्यों को वितरित किया जाना चाहिए। तृतीय, यदि राज्य ने किसी परियोजना को पूरा नहीं किया है तथा केन्द्रीय अनुदान की अधिक राशि खर्च कर दी है तो बाद में केन्द्रीय अनुदान की मात्रा कम की जा सकती है।

### क्या राज्य को अधिक शक्तियाँ दी जानी चाहिए? (Should the States be given More Powers)

इस सत्यता से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि वर्तमान समय में प्रत्येक क्षेत्र में राज्यों की तुलना में केन्द्र की स्थिति अधिक शक्तिशाली है। संविधान द्वारा चाहे राज्यों का वैधानिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक क्षेत्र निश्चित किया गया है, परन्तु इस निश्चित क्षेत्र में राज्यों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। राज्यों में अनेक ऐसी व्यवस्थायें हैं, जिनके आधार पर केन्द्र राज्य के कार्यों में हस्तक्षेप कर सकता है और व्यावहारिक रूप में करता भी है। इसी कारण भिन्न–भिन्न राजनैतिक दलों ने राज्यों को अधिक शक्ति देने की मांग की है। भारत के दोनों साम्यवादी दल, जनता पार्टी, शिरोमणी अकाली दल, तेलगू देशम्, ए.आई.डी.एम.के. तथा कुछ अन्य राजनीतिक दल राज्यों को अधिक शक्ति देने की मांग करते हैं। कर्नाटक, पाण्डिचेरी, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्रियों ने मार्च, 1983 में एक संयुक्त

परिषद् बनाई थी। इस परिषद् ने भी यह मांग की भी कि राज्यों को आर्थिक क्षेत्र में अधिक शक्तियाँ प्रदान की जायें और केन्द्र तथा राज्य के मध्य सम्बन्धों पर पुनः विचार किया जाये। पंजाब में अकाली दल ने केन्द्र सरकार की नीतियों के विरूद्ध 1982–83 में एक जोरदार संघर्ष किया था। अनेकों मांगों के अतिरिक्त राज्यों को अधिक शक्तियां प्रदान करने तथा केन्द्र राज्यों के सम्बन्धों के समुचित ढाँचे पर पुनः विचार करने की मांग भी अकाली दल की मांगों में सम्मिलित थी। इसी कारण केन्द्र सरकार ने अप्रैल 1983 में एक कमीशन नियुक्त करने की घोषणा की थी। इस कमीशन में एक मात्र सदस्य सरदार रणजीत सिंह सरकारिया नियुक्त किये गये थे, इसी कारण इस कमीशन को साधारणतः सरकारिया कमीशन कहा जाता है। सरकारिया कमीशन ने केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों के सभी पक्षों पर विचार करता है। इसके सम्बन्ध में हमारा यह विचार है कि पिछले कुछ वर्षों में हमारे देश में केन्द्रवाद (Centralism) की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है। यदि इस प्रवृत्ति पर नियन्त्रण न किया गया तो भारतीय संघवाद के लिये एक गंभीर स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। प्रत्येक क्षेत्र में केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप को कम करने के लिए राज्यों को अधिक अधिकार प्रदान करने की आवश्यकता है। विशेषतया वित्तीय क्षेत्र में राज्यों को आय के अधिक साधन प्रदान किये जाने चाहिए ताकि वे केन्द्र सरकार पर निर्भर न रहें और अपनी विकासशील योजनाओं को स्वेच्छा से लागू कर सकें।

### 2.2.7 केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में टकराव की स्थिति (Centre-State Relations : Position of Confrontation)

केन्द्र–राज्य सम्बन्ध आज भी उतने ही खराब हैं, जितने श्रीमती इन्दिरा गांधी के शासन काल में थे। श्रीमती इन्दिरा गांधी के कार्यकाल (1984) में ये सम्बन्ध बहुत बिगड़ गए थे, जब सिक्किम, जम्मू–कश्मीर व आन्ध्र प्रदेश की गैर–कांग्रेस सरकारों को अपदस्थ किया गया था। तीन गैर–कांग्रेस शासित राज्यों में जो केन्द्रीय सरकार के मन्त्री थे वह इन राज्यों (आन्ध्र, पं० बंगाल, कर्नाटक) के मुख्यमन्त्रियों के खिलाफ बन्दूक ही ताने रहते थे। नवम्बर 1987 में प्रधानमंत्री ने त्रिपुरा की कई सभाओं में भाषण किया और नृपेन चक्रवर्ती की सरकार के खिलाफ टीका–टिप्पणी की। जनता, माकपा व तेलगुदेशम के सदस्यों ने राज्यसभा में उनके राज्यों के प्रति केन्द्र की उपेक्षा के प्रति नाराजगी प्रकट की। कर्नाटक, पश्चिमी बंगाल व आन्ध्र प्रदेश में कई विकास योजनाएं इस वजह से रूकी हुई थी कि केन्द्र ने स्वीकृति नहीं भेजी। राज्य विधानसभा में स्वीकृत विधेयकों पर राष्ट्रपति के अनुमोदन के सम्बन्ध में भी ऐसे ही हाल रहे। इन विधेयकों को गृह मन्त्रालय में अटका दिया जाता था। कुछ मामलों में तो राज्यपाल ही विधेयकों को दबा कर बैठ जाते थे। आन्ध्र प्रदेश की राज्यपाल कुमदवेदन जोशी के बारे में ऐसी ही शिकायत की गई। कर्नाटक की बोम्बई सरकार (1989) को बर्खास्त करके राज्यपाल वेंकटसुब्बैया ने केन्द्रीय सरकार के सूबेदार की भूमिका का ही परिचय दिया। पर्यवेक्षकों के अनुसार 'अब देश में टकराव का वातावरण फिर पैदा हो रहा है।' कावेरी जल–विवाद और अयोध्या में मन्दिर निर्माण का मसला टकराव के उभरते मुद्दे हैं। भाजपा शासित राज्यों – राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और मध्य प्रदेश की सरकारों को बर्खास्त करके नरसिम्हा राव सरकार ने केन्द्र–राज्य टकराव को और अधिक प्रखर कर दिया। 21 फरवरी, 1998 को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रोमेश भण्डारी ने षडयंत्र के तहत् भाजपा मुख्यमन्त्री कल्याण सिंह को बर्खास्त कर जगदम्बिका पाल को सदन में शक्ति परीक्षण के बिना ही मुख्यमंत्री पद की तुरत–फुरत शपथ दिला दी। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने राज्यपाल की कार्यवाई को अनुचित बताते हुए रोक लगा दी। शक्ति परीक्षण में जीतने के बाद मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने राज्यपाल रोमेश भण्डारी को हटाने की मांग दोहराई। प्रधानमंत्री इन्द्र कुमार गुजराल ने राष्ट्रपति को अपनी मजबूरी बताई कि उनके मन्त्रिमण्डल के अधिकांश सदस्य भण्डारी को पद से हटाने के पक्ष में नहीं है। केन्द्र में भाजपा सरकार बनने के आसार देखते हुए रोमेश भण्डारी ने 16 मार्च 1998 को बर्खास्तगी के भय से त्यागपत्र दे दिया। तमिलनाडु की मुख्यमंत्री जयललिता के निर्देशानुसार 30 जून, 2001 को राज्य में दो केन्द्रीय मन्त्रियों की गिरफ्तारी और राज्य सरकार को केन्द्र द्वारा चेतावनी जारी करना केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में टकराव के विकृत संकेत हैं।

यह सच है कि केन्द्रीय सरकार की अपेक्षाकृत शक्तिशाली स्थिति ने राज्य सरकारों की स्थिति को प्रभावित किया है, किन्तु फिर भी राज्य केन्द्रीय सरकार की प्रशासनिक इकाइयां मात्र नहीं हैं। ग्रेनविल ऑस्टिन लिखते हैं, ''भारत नई दिल्ली नहीं है बल्कि राज्यों की राजधानियाँ भी है। राज्य केन्द्रीय सहायता के आकांक्षी हैं, किन्तु राज्यों के सहयोग के बिना संघ बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सकता। राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार की नीतियों का माध्यम हो सकती हैं, किन्तु उनकी सहायता के बिना केन्द्रीय सरकार अपनी योजनाओं को क्रियान्वित नहीं कर सकती। वस्तुतः दोनों ही एक–दूसरे पर निर्भर हैं।''

राज्यों में केन्द्रीय पहल से संचालित होने वाली परियोजनाओं की संख्या कम होनी चाहिए और केन्द्रीय पहल की परियोजनाओं के मानदण्ड निश्चित होने चाहिएँ। प्रशासनिक सुधार आयोग का विचार था कि राज्यों की परियोजनाओं को दो भागों–उत्पादित और गैर–उत्पादित में बांटा जाना चाहिए। योजना आयोग को वे सिद्धान्त तय करने चाहिए जिनके आधार पर परियोजना को दो भागों में बाटा जा सकता है, केवल उत्पदित परियोजना के लिए ही ऋण सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए। ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि इस परियोजना के चालू होने पर ब्याज सहित ऋण लौटाया जा सके। केन्द्रीय सरकार अपने कर्मचारियों का महंगाई भत्ता, आदि बढ़ाती रहती है, जिसका प्रभाव राज्यों के बजट पर भी पड़ता है। राज्य कर्मचारी भी केन्द्र के बराबर महंगाई भत्ते की मांग करते हैं, राज्य सरकारों को उनकी मांगों के आगे झुकना पड़ता है, जिससे उन पर काफी आर्थिक भार बढ़ जाता है। आयोग का विचार है कि केन्द्रीय सरकार की नीति के कारण ही मुद्रा–प्रसार बढ़ता है। अतः राज्यों के इस प्रकार के बढ़ते हुए व्यय का भार केन्द्रीय सरकार को ही वहन करना चाहिए।

### 2.2.8 निष्कर्ष

भारतीय संविधान में उल्लेखित शक्तियों के विभाजन का संकेत हमें भारत सरकार अधिनियम 1935 से मिलता है। भारतीय संविधान में शक्तियों के विभाजन को तीन सूचियों में रेखांकित किया गया है। संघ सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची। अविशिष्ट शक्तियाँ जो किसी भी सूची में नहीं दी गयी है, उन पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्र सरकार के पास है। केन्द्र और राज्य संबंधों की समीक्षा सरकारिया आयोग ने की थी। संविधान में प्रशासनिक और वित्तीय मामलों में केन्द्र और राज्यों के बीच संबंध का भी प्रावधान है।

### 2.2.9 मुख्य शब्दावली

- संघीय
- संघ सूची
- विधानमण्डल
- नौकरशाही
- वित्त आयोग

### 2.2.10 अभ्यास हेतू प्रश्न

1. भारतीय संविधान में शक्तियों के विभाजन की व्याख्या कीजिए।
2. केन्द्र–राज्य संबधों से आप क्या समझते हैं। इनकी विशेषताओं का वर्णन करो।
3. केन्द्र और राज्यों के बीच प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियों के प्रावधान की व्याख्या कीजिए।

### 2.2.11 संदर्भ सूची


- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.

- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

## 2.3 उच्चतम न्यायालय तथा न्यायिक पुनरावलोकन (Centre-State Relations)

### 2.3.1 परिचय

भारत में उच्चतम न्यायालय संविधान के रक्षक और संविधान के अन्तिम व्याख्याता के रूप में कार्य करता है। भारतीय उच्चतम न्यायालय पुनरावलोकन की व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं। यह संसद द्वारा पारित ऐसी किसी भी विधि को अवैध घोषित कर सकता है जो संविधान के विरूद्ध हो। इसी शक्ति के आधार पर वह संविधान की प्रभुत्ता और सर्वोच्चता की रक्षा करता है। वह संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों का अभिरक्षक है। प्रसिद्ध संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों का अभिरक्षक है। प्रसिद्ध संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों का अभिरक्षक है। प्रसिद्ध संविधान वेत्ता एम.सी. सीतलवाड़ ने ठीक ही लिखा है – ''संविधान के अन्तिम व्याख्याता के रूप में चाहे वह मौलिक अधिकारों का क्षेत्र हो अथवा संघ और राज्य के बीच उठने वाले प्रश्न एवं देश के समस्त कानूनों और प्रथाओं पर आधारित नियमों का क्षेत्र हो, राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक उन्नति के यंत्र स्वरूप, सर्वोच्च न्यायालय के प्रभाव पर बल देने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।'' भारत, के उच्चतम न्यायालय को विस्तष्त परामर्शदात्री शक्तियां प्राप्त हैं और सार्वजनिक महत्त्व के कानूनों तथा तथ्यों पर राष्ट्रपति ने अनेक बार उच्चतम न्यायालय के परामर्श से लाभ उठाया है। एम.वी. पायली के शब्दों में ''शायद ही कोई और न्यायालय ऐसा हो, जिसे संविधान के अन्तर्गत इतना क्षेत्र, अधिकार एवं महत्त्व प्रदान किया गया हो।''

### 2.3.2 उद्देश्य

- भारत में न्यायिक व्यवस्था की उत्पत्ति का पता लगाना।
- भारत में न्यायालयों की रचना का वर्णन करना।
- सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालयों के कार्यों एवं क्षेत्राधिकारों की व्याख्या करना।
- न्यायिक पुनरावलोकन की अवधारणा एवं मौलिक अधिकारों की रक्षा के महत्त्व को समझना।

### 2.3.3 सर्वोच्च न्यायालय का संगठन (Composition of the Supreme Court)

मूल रूप से सर्वोच्च न्यायालय के लिए मुख्य न्यायाधीश तथा 7 अन्य न्यायाधीशों की व्यवस्था की गयी थी और संविधान के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार, न्यायाधीशों को वेतन और सेवा शर्तें निश्चित करने का अधिकार संसद को दिया गया है। संसद के द्वारा समय–समय पर कानून में संशोधन कर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या में वर्षद्धि की गयी है। 1985 में विधि द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और 25 अन्य न्यायाधीश होंगे। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति करता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करने में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश से अवश्य ही परामर्श लेता है। विशेष स्थिति उत्पन्न होने पर भारत का मुख्य न्यायाधीश भारत के राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त कर तदर्भ न्यायाधीशों (Adhoc Judges) की नियुक्ति कर सकता है। इस प्रकार की तदर्थ नियुक्तियाँ मुख्य न्यायाधीश को उस समय उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से सलाह लेनी होगी, जिसमें से न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाए। भारत में तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति कनाड़ा में प्रचलित ऐसी ही प्रथा के समान है। सर्वोच्च या संघीय न्यायालय के पदनिवष्त्त न्यायाधीश को राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनाया जा सकता है।

मुख्य न्यायाधीशों की नियुक्ति और तत्सम्बन्धी विवाद (Appointment of the Chief Justice of India and Controversy about that) – सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में संविधान लागू किये जाने के समय से लेकर 1972 ई. तक यह परम्परा चली आ रही थी कि मुख्य न्यायाधीश के सेवानिवष्त होने के बाद उसके स्थान पर दूसरे मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में राष्ट्रपति द्वारा सेवानिवष्त होने वाले मुख्य न्यायाधीश से परामर्श अवश्य ही लिया जाता था और वह नियुक्ति न्यायाधीशों की वरिष्ठता के आधार पर की जाती थी। केवल एक बार 1964 में श्री जफर ईमाम को उनकी वरिष्ठता के बावजूद सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद नहीं प्रदान किया गया, लेकिन यह निर्णय बहुत कुछ सीमा तक श्री जफर के स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों के आधार पर किया गया था, लेकिन अप्रैल 1973 में जब प्रधान न्यायामूर्ति श्री सीकरी सेवानिवष्त हुए तो तीन न्यायाधीशों (श्री शेलट, श्री हेगड़े और श्री ग्रोवर) की वरिष्ठता का उल्लंघन करके श्री अजीतनाथ रे की मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति किया गया था। श्री अजीतनाथ रे की नियुक्ति के सम्बन्ध में श्री सीकरी से परामर्श नहीं लिया गया था। समस्त देश के विधि जगत द्वारा इस नियुक्ति का घोर विरोध किया गया। अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायाधीश श्री सीकरी ने प्रतिक्रिया व्यक्त की कि, ''सरकारी निर्णय राजनीतिक था।'' श्री छगला ने कहा, ''यह न्यायिक इतिहास का सर्वाधिक अंधेरा दिन है।'' सर्वोच्च न्यायालय बार एसोसिएशन ने इसे पूर्णतया राजनीतिक और गुण से सम्बन्ध नहीं (Purely Political and having no relation to merits) बतलाया लेकिन दूसरी और सरकार पक्ष का प्रतिपादन करते हुए मन्त्री श्री कुमारमंगलम ने संसद में कहा कि ''मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति मात्र वरिष्ठता के आधार पर नहीं की जा सकती और न्यायाधीश का दृष्टिकोण, उनका सामाजिक दर्शन हवा का रूख पहचानने की उनकी शक्ति और संसद की सर्वोच्चता को मान्यता–सर्वोच्च न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति के महत्वपूर्ण आधार होने चाहिए।'' उन्होंने स्पष्ट कहा कि ''यह आज की सरकार के विवेक पर निर्भर है कि वह अपनी दृष्टि में उपयुक्त व्यक्ति को नियुक्त करे। देश के सर्वोच्च न्याय आसन पर बैठने वाले का दृष्टिकोण व दर्शन भी उपयुक्त होना चाहिए।'' इस विचार पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए प्रसिद्ध विधिवेत्ता पालकीवाला ने कहा : ''अनुभव से हमें सीखना चाहिए कि राजनीति में न्याय के तत्त्वों का प्रवेश उचित है, पर न्याय मे राजनीति का प्रवेश विनाशकारी है। सरकार का यह दावा कितना असंगत है कि उसे सर्वोच्च न्यायालय में ऐसे न्यायाधीश नियुक्त करने का अधिकार है जो सत्ताधारी दल के दर्शन में आस्था रखते हैं। मान लीजिए एक ऐसा दल सत्ता में पहुंचे, जिसकी विचारधारा संविधान के विपरीत हो, तो ऐसी अवस्था में न्यायाधीश संविधान का पालन करेंगे या सत्ताधारी दल के दर्शन का।'' इस नियुक्ति के विरोध में सर्वोच्च न्यायालय के तीनों न्यायाधीशों – श्री शेलेट, श्री हेगड़े और श्री ग्रोवर ने त्यागपत्र दे दिया। समस्त देश में व्यापक रूप से शंका व्यक्त की गयी कि मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में अपनायी गयी यह नवीन सरकारी नीति न्यायपालिका को कार्यपालिका की चेरी बना देगी और इससे न्यायपालिका की स्वतन्त्रता तथा प्रतिष्ठा पर आघात पहुंचेगा। समस्त स्थिति पर विचार करने के 11 और 12 अगस्त को दिल्ली में सर्वोच्च न्यायालय बार एसोसिशन के तत्वाधान में 'अखिल भारतीय अधिवक्ता सम्मेलन' हुआ। जिसमें लगभग 700 प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। सम्मेलन में यह प्रस्ताव पास किया गया कि उच्च और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति अधिवक्ता संघ और न्यायाधीशों का प्रतिनिधित्व करने वाली समितियों की सिफारिश पर होनी चाहिए और उच्च न्यायालयों या सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को ही नियुक्त किया जाना चाहिए। न्यायापालिका की स्वतन्त्रता और सम्मान को बनाए रखने को दृष्टि से उपर्युक्त सुझाव निश्चित रूप से विचार योग्य है।

सन् 1977 में पुनः 1973 के ही ढंग पर मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति की गयी। जनवरी 1977 में मुख्य न्यायाधीश श्री अजीतनाथ रे के कार्यकाल की समाप्ति पर वरिष्ठता के आधार पर श्री एच.आर. खन्ना को मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए था, लेकिन जस्टिस खन्ना की नियुक्ति करने के स्थान पर जस्टिस

मिर्जा हमीदुल्ला बेग को मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया गया। सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन द्वारा इस नियुक्ति की आलोचना की गयी और अपनी वरिष्ठता का उल्लंघन किये जाने के विरोध में न्यायाधीश एच.आर. खन्ना के द्वारा त्यागपत्र दे दिया गया।

मुख्य न्यायाधीश पद पर नियुक्ति और विवाद का निराकरण (फरवरी 1978) – 1977 में सत्तारूढ़ शासक वर्ग न्यायापालिका की स्वतन्त्रता और उसकी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए वचनबद्ध था। अतः मुख्य न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में वरिष्ठता के सिद्धान्त को पुनः स्वीकार करते हुए फरवरी 1978 में श्री वाई.वी. चन्द्रचूड़ को मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया गया। अजीतनाथ रे के कार्यकाल की समाप्ति पर तत्कालीन शासक दल के कुछ नेताओं और कुछ विख्यात विधिवेत्ताओं ने कहा कि श्री चन्द्रचूड़ को मुख्यन्यायाधीश के पद पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। उनका कहना था कि मुख्य न्यायाधीश से जिस वैचारिक स्वतन्त्रता और निष्पक्षता की आशा की जाती है, उसका उनमें दुःखद अभाव रहा है। अप्रैल 1976 में बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) के मामले में उन्होने साहसपूर्ण निर्णय नहीं दिया। बी.एम. तारकुण्डे के अनुसार, ''बन्दी प्रत्यक्षीकरण मामले में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला कानूनी दृष्टि से कमजोर है ही, जनता और देश के लिए भी गम्भीरतम खतरे से भरा है। वह न्याय की धारणा का ही मखौल है।'' श्री छगला के द्वारा भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया गया, लेकिन इस प्रकार की आपत्तियों को अस्वीकार करते हुए सरकार द्वारा सोचा गया कि मुख्य न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सुनिश्चित परम्पराओं को अपनाया जाना चाहिए। शासन का यह कार्य न्यायपालिका की स्वतन्त्रता तथा उसके सम्मान को बनाए रखने की दषष्टि से उचित है। वस्तुतः मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त निश्चित किये जाने चाहिए, जिससे कि न्यायिक क्षेत्र की इन सर्वोच्च नियुक्तियों के सम्बन्ध में शासन के द्वारा मनमाना आचरण न किया जा सके और न्यायाधीश पद तथा न्यायाधीश पदधारी व्यक्ति विवाद के विषय में बनें। विधि आयोग ने भी अपनी 80वीं रिपोर्ट में कहा है कि सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में वरिष्ठता के सिद्धान्त का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए। न्यायापालिका की स्वतन्त्रता की रक्षा और लोकतन्त्र के सुचारू संचालन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में वर्तमान प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 124 में प्रावधान है कि सर्वोच्च न्यायालय की नियुक्ति में राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श अवश्य ही होगा। इस बात को लेकर विवाद था कि क्या राष्ट्रपति अकेले मुख्य न्यायाधीश के परामर्श को मानने के लिए बाध्य हैं?

इस विवाद के समाधान हेतू राष्ट्रपति द्वारा जुलाई 1998 में एक सन्दर्भ (Reference) सर्वोच्च न्यायालय को भेजा गया। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस संदर्भ पर 28 अक्तूबर, 1998 को लिए गए निर्णय के आधार पर अब सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया इस प्रकार है :

राष्ट्रपति द्वारा ये नियुक्तियां सर्वोच्च न्यायालय से प्राप्त परामर्श के आधार पर की जाएगी। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा इस प्रसंग में राष्ट्रपति को परामर्श देने से पूर्व 'चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों के समूह' से लिखित परामर्श प्राप्त करेंगे तथा इस परामर्श के आधार पर राष्ट्रपति को परामर्श देंगे।

सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने अपने सर्वसम्मत निर्णय में कहा है कि ''वरिष्ठतम न्यायाधीशों के समूह को एकमत से और लिखित से सिफारिश करनी चाहिए। जब तक न्यायाधीशों के समूह की राय मुख्य न्यायाधीश के विचार से मेल न खाए, तब तक मुख्य न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति से कोई सिफारिश नहीं जानी चाहिए।''

सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया है कि, ''यदि भारत दो मुख्य न्यायाधीश परामर्श की प्रक्रिया पूरी किये

बिना न्यायाधीशों की नियुक्ति और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को सिफारिश करते हैं तो सरकार ऐसी सिफारिश मानने के लिए बाध्य नहीं है।''

**न्यायिक नियुक्तियों में दखलन्दाजी**

हाल ही में ये तथ्य उभर कर सामने आया है कि न्यायिक नियुक्यिों में 'चयन समिति की सिफारिश' के बावजूद राष्ट्रपति भवन की दखलन्दाजी बढ़ने लगी है। पिछले वर्ष सुप्रीम कोर्ट में चार न्यायाधीशों की नियुक्ति के समय राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने फाईल पर यह असाधारण टिप्पणी दर्ज कर दी थी कि सुप्रीम कोर्ट की पीठ में होने वाली नियुक्तियों में भी अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए आरक्षण होना चाहिए। इसी चरण में राष्ट्रपति भवन ने सुप्रीम कोर्ट में तीन न्यायाधीशों की नियुक्ति सम्बन्धी प्रस्ताव को महीने भर से ज्यादा समय से लटकाए रखा। पर मुख्य न्यायाधीश आदर्श सेन आनन्द के नेतृत्व वाली मौजूदा न्यायपालिका उच्च न्यायालयों समेत किसी भी स्तर पर किसी रूप में कार्यपालिका की दखलन्दाजी के सख्त खिलाफ है।

**न्यायाधीशों की योग्यता (Qualification for the Judged) –**

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में अग्रलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है –

(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) वह किसी उच्च न्यायालय अथवा ऐसे दो या दो से अधिक न्यायालयों में लगातार कम से कम 5 वर्ष तक न्यायाधीश के रूप में कार्य कर चुका हो।

या

किसी उच्च न्यायालय अथवा न्यायालयों में लगातार 10 वर्ष तक अधिवक्ता (Advocate) रह चुका हो।

या

**राष्ट्रपति के विचार में एक पारंगत विभिन्नता**

यह अन्तिम उपबन्ध वस्तुतः नियुक्ति के क्षेत्र को व्यापक करने के लिए रखा गया है। इस उपबन्ध के अनुसार किसी विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाला कोई विख्यात न्यायालय में न्यायाधीश पद पर नियुक्त किया जा सकेगा। संविधान में यह स्पष्ट रूप से लिखित है कि सर्वोच्च न्यायालय का कोई भी न्यायाधीश भारत राज्य क्षेत्र में किसी न्यायालय अथवा किसी अन्य पदाधिकारी के न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता है और न वह किसी न्यायालय में किसी अन्य रूप में कार्य कर सकता है।

**कार्यकाल तथा महाभियोग (Term and Impleachment)**– सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति की आयु 65 वर्ष है। यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की भांति भारतीय संविधान में आजीवन कार्यकाल की व्यवस्था व्यवहारतः वैसी ही है, क्योंकि भारत में औसत आयु को देखते हुए 65 वर्ष की आयु बहुत होती है। इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 128 में किसी सेवानिवृत न्यायाधीश की नियुक्ति करने की भी विशेष व्यवस्था की गयी है। इस अवस्था के पूर्व वह स्वयं त्यागपत्र दे सकता है। इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को उसके पद से केवल प्रमाणित दुर्व्यवहार या अक्षमता के आधार पी ही हटाया जा सकता है। इस प्रकार के महाभियोग की कार्यविधि निश्चित करने का अधिकार संसद को प्राप्त है। कार्यविधि चाहे जो हो, लेकिन संसद के दोनों सदनों को अलग–अलग अपने कुल सदस्यों की संख्या के बहुमत और उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के

दो–तिहाई मत से प्रस्ताव पास करना होगा और वह प्रस्ताव राष्ट्रपति को भेजा जाएगा। उसके बाद राष्ट्रपति उस न्यायाधीश की पदच्युति का आदेश जारी करेगा। इस संबंध में यह आवश्यक है कि न्यायाधीश के विरूद्ध महाभियोग का प्रस्ताव एक ही सत्र में स्वीकार होना चाहिए और न्यायाधीश को अपने पक्ष में समर्थन तथा उसकी पैरवी का पूरा अवसर प्रदान किया जाएगा।

**वेतन, भत्ते और सेवा शर्ते (Salary, Allowances and Service Conditions)**– सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसे वेतन दिए जाएंगे जो संसद विधि द्वारा निर्धारित करे। 'उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय न्यायाधीश सेवा शर्त संशोधन विधेयक 1998 के आधार पर इन न्यायाधीशों के वेतन में आवश्यक सुधार किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के लिए 33 हजार रूपये मासिक तथा अन्य न्यायाधीशों के लिए 30 हजार रूपये मासिक निर्धारित किया गया है। न्यायाधीशों को यह संशोधित वेतन 1 जनवरी 1966 से देय है।

इन न्यायाधीशों को मासिक भत्ता, यात्रा भत्ता, निवास सुविधा, स्टाफ कार, सीमित मात्रा में पेट्रोल तथा अन्य कुछ सुविधाएँ भी प्राप्त होती हैं।

न्यायाधीशों के लिए पेंशन और सेवानिवष्त (ग्रेच्युटी) की व्यवस्था सर्वप्रथम 1976 में की गई थी। 1986 में पेन्शन, ग्रेच्युटी तथा सेवा शर्तों में भी उल्लेखनीय सुधार किया गया है। पेन्शन को अधिकतम सीमा मुख्य न्यायाधीश के लिए 60 हजार रूपये वार्षिक व अन्य न्यायाधीशों के लिए 54 हजार रूपये वार्षिक है। ग्रेच्युटी 30 हजार रूपये से बढ़ाकर 50 हजार रूपये कर दी गयी है। न्यायाधीशों की नियुक्ति के बाद उनके, भत्ते आदि में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। उन्हें वेतन व भत्ते भारत की संचित निधि से दिये जायेंगे, जिस पर भारतीय संसद को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।

उन्मुक्तियां (Immunities) न्यायाधीशों को अपने सभी कार्यों और निर्णय के लिए आलोचना से मुक्ति प्रदान की गयी, किन्तु न्यायालय के किसी निर्णय या किसी न्यायाधीश की किसी सम्मत्ति की शैक्षणिक दृष्टि से आलोचनात्मक विवेचना की जा सकती है। न्यायाधीश पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता है कि उन्होंने किसी प्रेरणा या हितवश एक विशेष प्रकार का निर्णय दिया। संसद के द्वारा भी महाभियोग के प्रस्ताव पर विचार करने के अतिरिक्त अन्य किसी समय पर न्यायाधीशों के आचरण पर विचार नहीं किया जा सकता है। न्यायालय को अधिकार प्राप्त है कि वह अपना सम्मान बनाये रखने और शत्रुतापूर्ण आलोचना से अपनी रक्षा करने के लिए किसी भी तथा कथित अपराधी के विरूद्ध न्यायालय के अवमानना की कार्यवाही कर सके। सन् 1953 में इस न्यायालय के एक निर्णय पर 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' द्वारा की गयी एक टिप्पणी के कारण उस समाचार–पत्र के सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक के विरुद्ध न्यायालय अवमान की कार्यवाही की गयी थी। न्यायालय अवमान की कार्यवाही ने केवल गरिमा की रक्षा करने हेतु वरन ऐसे कार्य को रोकने के लिए भी की जा सकती है, जिसका इसकी निष्पक्ष निर्णय की शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका हो। 'दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य' के विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसा ही निर्णय दिया था।

### 2.3.4 सर्वोच्च न्यायालय का अवस्थापन (Establishment of the Supreme Court)

संविधान में सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार दिया गया है कि वह स्वयं अपना अवस्थापन (Establishment) रखे और उस पर पूरा नियन्त्रण भी रखे। इस सम्बन्ध में संविधान–निर्माताओं का उचित रूप से यह मत था कि यदि इस प्रकार की व्यवस्था न हो तो न्यायालय की स्वाधीनता केवल एक भ्रम ही सिद्ध होगी। सर्वोच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और कर्मचारियों की सब नियुक्तियाँ मुख्य न्यायाधीश द्वारा या उसके द्वारा इस कार्य पर लगाये गये किसी अन्य न्यायाधीश द्वारा या पदाधिकारी द्वारा की जाती है। इन पदाधिकारियों की सेवा शर्तें भी इस न्यायालय द्वारा ही निर्धारित

की जाती है, उन पर होने वाले व्यय तथा न्यायालय के अवस्थापन के अन्य व्यय भारत की संचित निधि से किये जाते हैं।

**सर्वोच्च न्यायालय की कार्यविधि (Procedure of the Supreme Court)**– सर्वोच्च न्यायालय की कार्यविधि के सम्बन्ध में संविधान ने कुछ व्यवस्थाएं की हैं। इसके अतिरिक्त, संविधान ने भारतीय संसद को भी इस सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार प्रदान किया है तथा अन्य बातों पर सर्वोच्च न्यायालय स्वयं भी राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त कर नियम निर्मित करने की क्षमता रखता है। इसकी कार्यविधि के सम्बन्ध में संविधान द्वारा निम्न व्यवस्थाएं की गयी हैं :

(1) जिन विषयों का सम्बन्ध संविधान की व्यवस्था से हो या जिसके अन्तर्गत संवैधानिक प्रश्न उपस्थित हो या जिसमें विधि के अभिप्राय का स्पष्ट करने की आवश्यकता हो या जिन विषयों पर विचार का कार्य भारत के राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायालय को सौंपा हो, उनकी सुनवाई सर्वोच्च न्यायालय के कम से कम 5 न्यायाधीशों द्वारा की जाती है।

(2) सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख किसी ऐसे मुकदमें की अपील भी प्रस्तुत की जा सकती है जिसकी सुनवाई के उपरान्त यह विचार किया जाए कि उसमें संविधान की व्याख्या करना आवश्यक है या कानून के अभिप्राय को तात्विक रूप से प्रकट करना होगा। इस प्रकार के विवाद प्रारम्भ में पांच से कम न्यायाधीशों के सामने उपस्थित हो सकते हैं, पर यदि यह स्पष्ट हो जाए कि उसमें संविधान की व्याख्या या कानून के रूप में स्पष्टीकरण होना आवश्यक है तो भी कम से कम पांच न्यायाधीशों के समक्ष उपस्थित किया जाता है और उनकी व्याख्याके अनुसार ही उसका निर्णय होता है।

(3) सर्वोच्च न्यायालय के समस्त निर्णय खुले तौर पर किये जाते हैं।

(4) सर्वोच्च न्यायालय के समस्त निर्णय बहुमत के आधार पर किये जाते हैं। बहुमत के निर्णय से असहमत न्यायाधीश अपना पृथक निर्णय दे सकता है। यह अन्य किसी प्रकार से बहुतम के निर्णय को प्रभावित नहीं कर सकता। बहुमत निर्णय ही मान्य होता है।

**सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ (Power of the Supreme Court)**– संघात्मक संविधान में संघात्मक न्यायालय का विशेष स्थान प्राप्त होता है ताकि संतुलन कायम किया जा सके और संविधान की सर्वोच्च और केन्द्र तथा इकाइयों को अपने–अपने क्षेत्र में स्वायत्तता (Autonomy) कायम की जा सके।

किसी किसी ऐसे न्यायालय की आवश्यकता होती है जोकि संविधान की व्याख्या कर सके, केन्द्र और राज्यों के झगड़े को या राज्यों के आपसी झगड़ों को निपटा सके। नहीं तो एक दूसरे के अधिकारों में हस्तक्षेप और वाद–विवाद उत्पन्न हो जाएंगे। संविधान द्वारा दिए गए मौलिक अधिकारों को सुरक्षित रखने की आवश्यकता है ताकि सरकार उनको छीन न ले। इसको सुरक्षित रखने के लिए संविधान ने भारत के सर्वोच्च न्यायालय को बहुत–सी शक्तियां प्रदान की है। कुछ लेखक तो भारत के सर्वोच्च न्यायालय को अमेरीका के सर्वोच्च न्यायालय से भी अधिक शक्तिशाली बताते हैं। श्री अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर का कहना है, ''भारत के सर्वोच्च न्यायालय को संसार के किसी भी अन्य सर्वोच्च न्यायालय से अधिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है, संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से भी अधिक।'' (The Supreme Court of India has wider jurisdiction that the highest Court in any Federation of the world including the Supreme Court of U.S.A.) भारत के न्यायालय को वास्तव में बहुत सी शक्तियाँ दी गई हैं, जिनका पता निम्नलिखित बातों से चलता है :

1. प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction) : सर्वोच्च न्यायालय को कुछ मुकद्मों में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। अर्थात् कुछ ऐसे मुकद्दमें हैं जो सीधे सर्वोच्च न्यायालय के पास ले जाए जा सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे सभी झगड़ों में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा, जिनमें

   (i) झगड़ा केन्द्रीय सरकार और एक या अधिक राज्य के बीच हों।

   (ii) दो या अधिक राज्यों में आपस में विवाद हो या झगड़ों में कोई कानूनी प्रश्न हो जिस पर कानूनी अधिकार निर्भर हो।

इस अधिकार से सर्वोच्च न्यायालय संघ और राज्यों में सन्तुलन पैदा कर सकता है। उपरलिखित प्रकार के मुकद्दमें भारत के किसी अन्य न्यायालय में नहीं ले जाए जा सकते।

**अपवाद (Exception)** : निम्नलिखित प्रकार के झगड़े सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार में नहीं आते :

1. सरकारों के मध्य झगड़ा किसी न्यायोचित अधिकार पर आधारित होना चाहिए। सरकारों के बीच जो झगड़े किसी विधि पर आधारित न हों या जिनका आधार वैधानिक न हो, ये सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार में नहीं आते।
2. सातवें संशोधन के अनुसार संविधान के आरम्भ होने से पहले की गई राज्यों और संघ के बीच की संधियों और समझौतों इत्यादि में कोई प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार इसे नहीं है।
3. सर्वोच्च न्यायालय को व्यक्तियों, सभाओं (Associations) और स्थानीय संस्थाओं के बारे में भी कोई प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार नहीं है।
4. संसद कानून द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों में राज्य के आपसी झगड़े को निकाल सकती है जबकि ये झगड़े किसी साझी नदी या घाटी के पानी के प्रयोग, वितरण या नियन्त्रण के विषय में हों।
5. इसको ऐसे मामले में, जो वित्त आयोग को संघ और राज्यों में कई प्रकार के खर्चे के विषय में सौंपे गए हों, कोई प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार नहीं है।

नागरिकों के मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र (Enforcement of Fundamental Rights in Original Jurisdiction) : संविधान के तीसरे भाग में जो मौलिक अधिकार दिए गए हैं, उनको लागू करवाने के लिए नागरिक न्यायालय के पास जा सकते हैं। नागरिक मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए उच्च न्यायालय में भी जा सकते हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वे पहले सम्बन्धित राज्य के उच्च न्यायालय के शरण लें और बाद में सर्वोच्च न्यायालय का द्वारा खटखटाएं। नागरिक सीधे सर्वोच्च न्यायालय के पास जा सकते हैं। रामजी लाल बनाम इन्कम टैक्स ऑफिसर के मुकद्दमें का निर्णय करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित मुकद्दमें ही इसके प्रारम्भिक क्षेत्र में आते हैं, वे नहीं जोकि संविधान के किसी और भाग में दिए हों।

राष्ट्रपति व उप–राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित विवादों का निर्णय करना (To decide election disputes of the President and Vice-President) :32वें संशोधन से पूर्व राष्ट्रपति तथा उप–राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों को सुनने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को था और उसका निर्णय अन्तिम होता था। 1967 में डॉ. जाकिर हुसैन तथा 1969 में वी.वी. गिरि के चुनाव–सम्बन्धी विवादों को सर्वोच्च न्यायालय ने सुना था और उनके चुनावों को वैध घोषित किया था। परन्तु अगस्त 1975 में 39वां संशोधन पास किया गया, जिसके अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई कि

राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों का निर्णय भविष्य में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जाएगा। बल्कि ऐसे झगड़ों का निर्णय भविष्य के लिए संसद कानून द्वारा किसी सत्ता या संस्था की व्यवस्था करेगी। 3 फरवरी, 1977 को राष्ट्रपति फखरूद्दीन अली अहमद ने राष्ट्रपति व उप–राष्ट्रपति अधिनियम 1952 को संशोधित करने के लिए अध्यादेश जारी किया और 9 सदस्यों की स्थापना की परन्तु जनता पार्टी ने सत्ता में आने के बाद इस अध्यादेश को समाप्ति होने दिया। जनता सरकार ने 39वें संशोधन को प्रभावहीन बनाने के लिए तथा सर्वोच्च न्यायालय को पुनः राष्ट्रपति व उप–राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों को सुनने का अधिकार देने के लिए 16 जून, 1977 को लोकसभा में बिल पेश किया, जिसे 17 जून 1977 को सर्वसम्मति से पार कर दिया गया। इस प्रकार अब फिर सर्वोच्च न्यायालय का राष्ट्रपति तथा उप–राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित विवादों को सुनने का अधिकार प्राप्त हो गया है। 44वें संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति अथवा उप–राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित सभी सन्देहों और विवादों की जांच सर्वोच्च न्यायालय करेगा तथा सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अन्तिम होगा।

**2. अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)** : सर्वोच्च न्यायालय के तीन प्रकार के अपीलीय क्षेत्राधिकारी है :

(i) संवैधानिक क्षेत्राधिकार (Constitutional Jurisdiction) : संवैधानिक मामलों में यह न्यायालय तब ही अपील सुन सकेगा जब उच्च न्यायालय यह प्रमाण पत्र दे दे कि मुकद्दमें में कोई कानूनी प्रश्न विचारणीय है। यदि वह ऐसा प्रमाण–पत्र देने से इंकार कर दे तो सर्वोच्च न्यायालय स्वयं अपील के लिए विशेष स्वीकृति दे सकता है।

(ii) दीवानी क्षेत्राधिकार (Civil Jurisdiction) : दीवानी मुकद्दमें में यह न्यायालय उच्च न्यायालय के किसी फैसले या अन्तिम आदेश के विरुद्ध अपील सुन सकता है यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाण–पत्र दे दे कि मुकद्दमें में 20,000 या इससे अधिक मूल्य की सम्पत्ति का प्रश्न विवादग्रस्त है। परन्तु संविधान के 30वें संशोधन द्वारा 20,000 रूपए की राशि की शर्त हटा दी गई है। अब किसी भी राशि का मुकद्दमा सर्वोच्च न्यायालय के पास जा सकता है जब उच्च न्यायालय यह प्रमाण–पत्र दे दे कि मुकद्दमा सर्वोच्च न्यायालय के सुनने के योग्य हैं। यह ऐसे मुकद्दमों की अपीलें सुन सकता है जबकि उच्च न्यायालय यह प्रमाण–पत्र दे दे कि मुकद्दमें में कोई प्रश्न विवाद ग्रस्त है।

(iii) फौजदारी क्षेत्राधिकार (Criminal Jurisdiction) : निम्नलिखित फौजदारी मुकद्दमों में ये अपीलें सुन सकेगा :

(क) यदि अपील करने पर उच्च न्यायालय अपराधी की रिहाई के फैसले को बदल दे और उसके मृत्यु दण्ड दे दे, तो यह दूसरी अपील का मुकद्दमा होगा।

(ख) यदि किसी मुकद्दमें को उच्च न्यायालय ने अपने पास ले लिया हो और उसने किसी अपराधी को मौत का दण्ड दिया हो।

(ग) यदि उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के नियमों के अनुसार यह प्रमाण–पत्र दे दे कि मुकद्दमा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुने जाने के योग्य है। परन्तु 134वें अनुच्छेद के अनुसार अपील की कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है कि यदि उच्च न्यायालय अपराधी को फौजदारी मुकद्दमें में छोड़ने का आदेश जारी कर दे तो उसके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील हो।

संविधान ने संसद को अधिकार दिया है कि वह कानून द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के फौजदारी मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकारी को बढ़ा सकती है।

136वें अनुच्छेद के अनुसार सैनिक न्यायालय को छोड़कर किसी भी उच्च न्यायालय के फैसले के विरुद्ध अपील की विशेष स्वीकृति देने पर सर्वोच्च न्यायालय पर कोई संवैधानिक प्रतिबन्ध नहीं है और यह बात स्वयं सर्वोच्च न्यायालय पर निर्भर है।

अपने अधिकार का प्रयोग यह न्यायालय इस प्रकार करेगा कि ऐसे मुकद्दमों में पीड़ित पक्ष को दुःख से मुक्ति दी जाए, जहाँ कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन किया गया हो। चाहे उस पक्ष के पास अपील करने के लिए कोई अन्य उचित कारण न भी हो। इसके इस अधिकार पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता चाहे फैसले को अन्तिम रूप दिया जा चुका हो, परन्तु इस शक्ति का प्रयोग करते समय वह संविधान की धाराओं के विरूद्ध नहीं चलेगा और न ही कोई सुविधा देने की व्यवस्था करेगा जोकि संविधान में नहीं है क्योंकि ऐसा करना कानून के विरूद्ध होगा जोकि न्यायालय का काम नहीं है। कानून बनाना संसद का कार्य है। न्यायालय ने तो केवल यह देखना होता है कि प्रस्तुत विवाद में किसी कानून का उल्लंघन तो नहीं किया गया। जिस कानून के अधीन कार्यवाही की गई है वह संविधान की व्यवस्थाओं का व्यतिक्रमण तो नहीं। उचित और योग्य व्यक्तियों वाले न्यायालय न्यायपूर्वक ऐसे निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं। अन्य न्यायालयों के कार्यों में इससे अधिक दखल यह न्यायालय नहीं देगा।

3 **मौलिक अधिकारों के विषय में क्षेत्राधिकार (Jurisdiction regarding fundamental Rights)** : यह न्यायालय स्वतन्त्रताओं और मौलिक अधिकारों का रक्षक है। 32वें अनुच्छेद के अनुसार इसे यह शक्ति दी गई कि यह आदेश या लेख जैसे बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habesa Corpus), परमादेश (Mandamus), प्रतिषेध (Prohibition), अधिकार पष्च्छा (Qua-Warranto) और उत्प्रेषण लेख (Certiorari) मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय की सहायता लेने के अधिकार को राष्ट्रपति स्थगित कर सकता है।

मौलिक अधिकारों को लागू करते समय संसद या विधानमण्डलों द्वारा पाए किए कानूनों की व्याख्या करते समय भारत का सर्वोच्च न्यायालय कानूनी नीति की जांच, निरीक्षण और निर्णय नहीं कर सकता। न्यायाधीशों ने केवल यह देखना होता है कि जो कानून उसके नोटिस में लाए गए हैं, वे किसी उपयुक्त संस्था द्वारा बनाए गए हैं? ऐसा इसलिए किया गया है कि संविधान में ऐसा लिखा गया है। इस विषय में भारत का सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका के इस न्यायालय से बिल्कुल भिन्न है क्योंकि अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को अपनी शक्ति कानून की प्रक्रिया (Process of Law) से प्राप्त हुई है जिसके द्वारा वह कानून की अच्छाई और बुराई को देख सकता है और यदि वह प्राकृतिक न्याय के विरूद्ध हो तो उसको रद्द कर सकता है। इसे एक अच्छे विधानमण्डल का कार्य भाग प्राप्त होता है, परन्तु चरणजीत बनाम भारत सरकार में इस न्यायालय ने कहा है कि न्यायालय किसी कानून को तब तक ठीक समझता है जब तक वह बुरा साबित न हो जाए।

4. परामर्श शक्तियाँ (Advisory Powers) : 143वें अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि किसी भी सार्वजनिक महत्व के विषय पर सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श कर सकता है, परन्तु इस अनुच्छेद के अनुसार इस न्यायालय के लिए जरूरी है कि वह अपनी राय अवश्य दे और न ही राष्ट्रपति के लिए जरूरी है कि वह इसके परामर्श के अनुसार चले। यह परामर्श कोई निर्णय नहीं होता।

इसमें संदेह है कि 143वें अनुच्छेद द्वारा दी गई राय 141वें अनुच्छेद की धाराओं के अन्तर्गत आती है, परन्तु देहली कानून अधिनियम (Delhi Law Act) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए परामर्श का प्रयोग भिन्न–भिन्न न्यायालयों ने किया है। अमेरिका और आस्ट्रेलिया के सर्वोच्च न्यायालय ऐसे कानूनी प्रश्नों पर राय देने के विरुद्ध

हैं। कीथ (Keith) परामर्शी शक्तियों के पक्ष में हैं क्योंकि इससे समय की बचत होती है।

कुछ लोगों ने सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की आलोचना की है। उनका कहना है कि सर्वोच्च न्यायालय को काल्पनिक अथवा सम्भावित (Hypothetical) कानूनी प्रश्नों पर अपने विचार नहीं प्रकट करने चाहिए। उसको केवल उन्हीं प्रश्नों पर ही सम्मति देनी चाहिए जो अभियोग के रूप में उसके पास आते हैं।

परन्तु यह आलोचना निराधार है क्योंकि हमारे देश में लिखित संविधान है तथा वह देश का आरम्भिक कानून है; समस्त देश का राज्य कार्य इसी कानून के अनुसार ही चलाया जाता है। किसी भी कानून के विषय में तब तक कोई निश्चित सम्मति नहीं बनाई जा सकती, जब तक कि सर्वोच्च न्यायालय उसकी संवैधानिकता के विषय में अन्तिम निर्णय नहीं दे देती है। इसलिए ऐसे कानून के विषय में जिनकी संवैधानिकता के विषय में अन्तिम निर्णय नहीं दे देती। इसलिए ऐसे कानून के विषय में जिनकी संवैधानिकता के विषय में सन्देह हो, सर्वोच्च न्यायालय की सम्मति ले लेनी बहुत उचित है क्योंकि इस प्रकार जीवन में स्थिरता उत्पन्न होती है तथा मुकद्‌दमें बाजी कम होती है।

राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायालय से अभी तक नौ मामलों में सलाह मांगी है और सर्वोच्च न्यायालय ने सभी मामलों में अपनी राय दी है। राष्ट्रपति की ओर से सबसे पहले 1951 में देशी रियासतों के भारत संघ में विलय के सम्बन्ध में राय मांगी गई थी। इसके अतिरिक्त 1958 में केवल शिक्षा विधेयक 1960 में बेरूबाड़ी के सम्बन्ध में 1963 मे तटकर अधिनियम, 1964 में उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के सदस्य श्री केशव सिंह से सम्बन्धित मामलों पर तथा 1974 में गुजरात विधानसभा के भंग होने के कारण, अगस्त 1974 में राष्ट्रपति का चुनाव करवाने के सम्बन्ध में राय मांगी थी। सर्वोच्च न्यायालय ने विधानसभा के भंग होने की स्थिति में राष्ट्रपति का चुनाव करवाने के सम्बन्ध में 5 जून, 1974 को अपना परामर्श दिया था, जिसमें कहा गया था कि अनुच्छेद 62 के अनुसार राष्ट्रपति का चुनाव पहले राष्ट्रपति के कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व होना आवश्यक है चाहे विधानसभा भंग क्यों न हो। एक अगस्त, 1978 को राष्ट्रपति श्री नीलम संजीवा रेड्डी ने आपातकाल में किए गए अपराधों के लिए शाह आयोग आदि आयोगों द्वारा दोषी पाए गए विशिष्ट व्यक्तियों पर, जिनमें भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा उनके कुछ मन्त्रिमण्डलीय सहयोगी और उनके पुत्र श्री संजय गांधी शामिल थे, मुकद्दमा चलाने के लिए विशेष अदालतों के गठन की संवैधानिकता वैधता के बारे में राय मांगी। सर्वोच्च न्यायालय से विशेष रूप से इस प्रयोजन के लिए तैयार किए गए एक विधेयक के मसौदे पर राय देने के लिए कहा गया। सर्वोच्च न्यायालय ने 1 दिसम्बर, 1978 को अपनी राय देते हुए आपातकाल के दौरान हुए अपराधों के लिए अन्य राजनीतिक तथा सार्वजनिक पदों पर आसीन व्यक्तियों पर मुकद्दमें चलाने हेतु विशेष न्यायालयों के गठन को संवैधानिक रूप से वैध बताया। राम जन्म भूमि बाबरी मस्जिद विवाद के मामले पर राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श मांगा कि अयोध्या में राम मन्दिर था या नहीं। 2 अक्तूबर, 1994 को अपना ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए कहा कि सर्वोच्च न्यायालय राष्ट्रपति को परामर्श देने के लिए बाध्य नहीं है और इसके साथ ही उसने अयोध्या मामले पर राष्ट्रपति को परामर्श देने से इन्कार कर दिया।

5. अपने निर्णय के पुर्निरीक्षण का अधिकार (Power to Review its own Decision) : चाहे सर्वोच्च न्यायालय के जज उच्चकोटि के विधिवेता हैं तथा सर्वोच्च न्यायालय में निर्णय करते समय छान–बीन करते हैं फिर भी उनसे कभी न कभी गलती हो सकती है। इसलिए उनको अपने निर्णय तथा आदेशों का पुर्निरीक्षण करने का अधिकार दिया गया है। इसके द्वारा उनके किए गए गलत निर्णय भी संशोधित किए जा सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय का यह अधिकार दिया गया है क्योंकि देश में इससे बड़ा कोई न्यायालय नहीं, जिसमें इसके विरूद्ध अपील हो सके। उदाहरणस्वरूप

सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य के मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है। परन्तु 1967 में गोकलनाथ मुकदद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती। 1973 में केशवानंद भारती मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है।

6. एक अभिलेख न्यायालय (A Court of Record) : संविधान की धारा 129 द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को एक अभिलेख न्यायालय भी माना गया है। इसकी समस्त कार्यवाही तथा निर्णय सदैव के लिए यादगार तथा प्रमाण के रूप में प्रकाशित किए जाते हें तथा देश के समस्त न्यायालयों के लिए यह निर्णय न्यायिक दृष्टांत (Judicial Precedents) के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। इन अभिलेखों का इतना महत्व होता है कि इनकी पवित्रता पर उंगली नहीं उठाई जा सकती तथा न ही देश के अन्य न्यायालय इन अभिलेखों के विरूद्ध जा सकते हैं; जब किसी न्यायालय को कानून द्वारा अभिलेख न्यायालय बना दिया जाता है तब ऐसे न्यायालय को न्यायालय के अपमान (Contempt of Court) का दण्ड देने का अधिकार मिल जाता है तथा इस अधिकार को संविधान द्वारा स्वीकृति मिली है।

7. सर्वोच्च न्यायालय को न्यायालयों की कार्यवाही तथा कार्यविधि का नियमित करने के लिए नियमों का निर्णय करने की शक्ति (Power to frame rules to regulate the activities of the Courts) : सर्वोच्च न्यायालय को अनुच्छेद 145 द्वारा न्यायालय की कार्यवाही तथा कार्यविधियों को नियमित करने के लिए समय–समय पर नियमों का निर्माण करने की शक्ति दी गई है। 42वें संशोधन द्वारा इस अनुच्छेद में एक नई उपधारा सम्मिलित की गई है। इस नई उपधारा के अधीन सर्वोच्च न्यायालय को अनुच्छेदों 131ए तथा 138ए के अधीन की जाने वाली कार्यवाहियों को नियमित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति दी जाती है।

8. संविधान की व्याख्या तथा रक्षा (Interpretation and Protection of the Constitution): संविधान की व्याख्या तथा रक्षा करना भी सर्वोच्च न्यायालय का कार्य है। जब कभी भी संविधान की व्याख्या के बारे में कोई मतभेद उत्पन्न हो तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्याख्या दी जाती है और सर्वोच्च न्यायालय की व्याख्या को अन्तिम तथा सर्वोत्तम माना जाता है। अनुच्छेद 141 के अनुसार, ''सर्वोत्तम न्यायालय द्वारा घोषित किया गया कानून भारत के क्षेत्र में स्थित सभी न्यायालयों पर बाध्य होगा।'' (The Law decleared by Supreme Court shall be binding on all Courts within the territory of India.) केवल संविधान की व्याख्या करना ही नहीं बल्कि इसकी रक्षा करनी भी सर्वोच्च न्यायालय का कार्य है। यदि सर्वोच्च न्यायालय को यह विश्वास हो जाए कि संसद द्वारा बनाया गया कानून या कार्यपालिका का आदेश संविधान का उल्लंघन करता है, तो वह उस कानून या आदेश को असंवैघानिक घोषित करके रद्द कर सकता है। संविधान देश की सर्वोच्च विधि है और उसकी रक्षा करना सर्वोच्च न्यायालय का कर्त्तव्य है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई संविधान की व्याख्या अन्तिम होती है।

10. विविध कार्य (Miscellaneous Functions) : सर्वोच्च न्यायालय को निम्नलिखित कार्य भी करने पड़ते हैं :

(i) सर्वोच्च न्यायालय अपना कार्य चलाने के लिए अपने पदाधिकारियों की नियुक्ति कराता है। यह नियुक्तियाँ वह आप तथा संघीय लोक सेवा आयोग की सहायता से करता है।

(ii) उच्चतम न्यायालय देश के अन्य न्यायालयों पर शासन करता है। यह देखता है कि प्रत्येक न्यायालय में न्याय ठीक प्रकार से हो रहा है अथवा नहीं।

(iii) राष्ट्रपति अथवा उपराष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी यदि कोई मतभेद हो जाए तो उसका निर्णय उच्चतम न्यायालय करता है तथा इसका निर्णय अन्तिम होता है।

(iv) संघीय लोक सेवा आयोग के सदस्यों तथा सभापति को पदच्युत करने का अधिकार तो राष्ट्रपति के पास है परन्तु राष्ट्रपति ऐसा तब ही कर सकेगा जब उच्चतम न्यायालय उसकी जांच पड़ताल करके उसको अपराधी घोषित कर दे।

क्षेत्राधिकार में विस्तार (Enlargement of Jurisdiction) : अनुच्छेदों 136 और 139 के अन्तर्गत संसद का अपने अधिनियम द्वारा निम्नलिखित मामलों के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार विस्तष्त करने का अधिकार है :

(a) संघ सूची में दिया गया कोई भी मामला, (b) उच्च न्यायपालिका के फैसलों के विरूद्ध फौजदारी मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार, (c) कोई भी मामला जो भारत सरकार और किसी भी राज्य की सरकार ने समझौते द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को दिया हो, (iv) मूल अधिकारों को लागू करने के अतिरिक्त किसी और उद्देश्य के लिए निर्देश, आदेश तथा लेख जारी करना और (v) सर्वोच्च न्यायालय को संविधान द्वारा सौंपे गए क्षेत्राधिकार को अच्छी प्रकार से प्रयोग करने के लिए कोई दूसरी जरूरी शक्ति।

11. न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review) : सर्वोच्च न्यायालय का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य संविधान की व्याख्या तथा रक्षा करना है और यही सर्वोच्च न्यायालय का सबसे महत्वपूर्ण अधिकार भी है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का संरक्षक होने के नाते उसकी अन्तिम व्याख्या करने का अधिकार भी प्राप्त है। इसके अधीनप वह संसद तथा राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाए कानूनों की पुनः छानबीन कर सकता है तथा उनको असंवैधानिक तथा नियम–विरूद्ध घोषित कर सकता है। न्यायिक पुनर्विचार का अर्थ है, ''उच्च शक्ति जिस के द्वारा उच्चतम न्यायालय यह देखता है कि राज्य सरकारें तथा केन्द्रीय सरकार के कार्य शासन रचना के विरोधी तो नहीं।'' इसके द्वारा सर्वोच्च न्यायालय जांच करता है कि राज्य विधानमण्डलीय तथा केन्द्रीय सरकार के निर्मित कानून भारतीय संविधान के अनुसार है अथवा नहीं। यदि उच्चतम न्यायालय यह अनुभव करे कि कोई कानून संविधान की धाराओं के विरूद्ध है तो उसको संविधान के विरूद्ध होने के कारण रद्द कर दिया जाता है। इस प्रकार से सर्वोच्च न्यायालय के पास संविधान की व्याख्या करने की अन्तिम शक्ति है। केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार के अंग अपनी समस्त शक्ति संविधान से ही प्राप्त करते हैं। एक संघीय राज्य में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की शक्तियों सीमित होती हैं तथा किसी के द्वारा भी अधिकारों का अतिक्रमण संविधान का उल्लंघन समझा जाता है। हमारे संविधान में शक्तियों का विभाजन किया जाता है। संघीय सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संसद को दिया गया है। इसी प्रकार राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राज्यों के विधानमण्डलों के पास है। इसी प्रकार जब भी संसद अथवा राज्य सरकारें अपने अधिकारों से बाहर होकर कोई कार्य करती है तब उच्चतम न्यायालय को ऐसे कानून को असंवैधानिक घोषित करने का अधिकार है।

संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार भी संसद तथा राज्य विधानमण्डलों की शक्तियों को सीमित करते हैं। जो भी कानून संविधान में दिए इन मौलिक अधिकारों के विरूद्ध जाता है, उच्चतम न्यायालय, उसको रद्द कर देता है। यह शक्ति उच्च न्यायालय को दी गई है।

42वें संशोधन द्वारा संविधान में 144ए नामक एक नया अनुच्छेद सम्मिलित किया गया है जिसके अनुसार केन्द्रीय कानून और राज्य कानूनों की संवैधानिक वैधता का निर्णय ऐसी न्यायपीठ (Bench) द्वारा होना चाहिए जिसमें 7 न्यायाधीश हों और तब तक कोई कानून अवैध करार नहीं दिया जा सकता, जब तक कानून की अवैधता

के बारे में निर्णय न्यायपीठ के दो तिहाई न्यायाधीशों द्वारा न किया गया हो। 42वें संशोधन द्वारा ही संविधान में अनुच्छेद 131ए शामिल किया जाता है, जिसके द्वारा केन्द्रीय कानून की संवैधानिक वैधता को केवल सर्वोच्च न्यायालय में ही चुनौती दी जा सकती है। 42वें संशोधन से पूर्व केन्द्रीय कानून की संवैधानिकता वैधता की जांच करने का अधिकार उच्च न्यायालय को भी प्राप्त था। परन्तु इस संशोधन द्वारा यह अधिकार केवल सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया। जिन विषयों पर केन्द्र और राज्य दोनों के कानूनों की वैधता का प्रश्न निहित हो, उन पर भी केवल सर्वोच्च न्यायालय को राज्य के कानून की संवैधानिकता जांच करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए राज्य के कानून की संवैधानिक जांच तभी तक कर सकता था यदि उसमें केन्द्रीय कानून का भी प्रश्न हो। दिसम्बर, 1977 में 43वां संशोधन पास किया गया, जिसके द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के 42वें संशोधन से पहले की स्थिति को स्थापित किया गया है। अर्थात् 43वें संशोधन द्वारा अनुच्छेदों 32ए, 131ए तथा 144ए को संविधान में से निकाल दिया गया है। अतः अब पुनः सर्वोच्च न्यायालय केन्द्र तथा राज्यों के कानूनों की संवैधानिक जांच कर सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग कई महत्वपूर्ण कानूनों को रद्द करने के लिए किया है। 27 फरवरी, 1967 को सर्वोच्च न्यायालय ने गोकलनाथ बनाम सरकार के मुकद्दमें में यह निर्णय दिया था कि संसद को मौलिक अधिकारों में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण के कानून को भी अवैध घोषित किया। राजाओं आदि के प्रिवी पर्स (Privy Purses) तथा अन्य विशेषाधिकारों को समाप्त करने के राष्ट्रपति के आदेश को भी अवैध घोषित किया गया। स्वामी केशवानंद भारती के मुकद्दमें में निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संसद मौलिक अधिकारों में परिवर्तन कर सकती है पर संविधान के मौलिक ढांचे में परिवर्तन नहीं कर सकती। 9 मई, 1980 को सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक महत्वपूर्ण निर्णय में 42वें संशोधन अधिनियम 1976 के उस खण्ड को रद्द कर दिया, जिसमें संसद के अनुच्छेद 31सी को भी रद्द कर दिया। रद्द किये अनुच्छेद में मौलिक अधिकारों पर निर्देशक सिद्धान्तों का वरीयता दी गई थी। मई, 1980 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक अन्य मुकद्दमें की जांच करते हुए यह फैसला दिया कि मौत की सजा संवैधानिक है। सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि भारतीय दण्ड संहिता (Indian Penal Code) में मौत की सजा की व्यवस्था संविधान के अनुच्छेदों 14, 19 और 31 का न तो उल्लंघन करती है, न ही यह संविधान के मूल ढांचे के विरूद्ध है। 19 नवम्बर, 1991 को सर्वोच्च न्यायालय ने दल–बदल विरोधी कानून 1982 (52वें संवैधानिक संशोधन) को उचित ठहराया। परन्तु संविधान की 10वीं अनुसूची के सातवें पैरे को र्‌दद कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि सातवें पैरे से अनुच्छेदों 136, 226 और 227 के उद्देश्यों का उल्लंघन होता है।

सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति (Position of the Supreme Court) : इस विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस न्यायालय को संसार के सभी संघात्मक या सर्वोच्च न्यायालयों से अधिक शक्तियां प्राप्त है। भूतपूर्व महान्यायावादी श्री सीतलवाड ने ठीक ही कहा था, ''इस न्यायालय का लेख 20 लाख वर्ग मील से अधिक क्षेत्र पर, जिसमें लगभग 33 करोड़ (अब 101 करोड़ से अधिक) की जनसंख्या निवास करती है, लागू होगा। यह कहना सच है कि इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ अपनी प्राकृतिक सीमा में, राष्ट्रमण्डल के किसी भी पक्ष या संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की और क्षेत्राधिकार शक्तियों से विस्तष्त है। इसे ही संविधान की अन्तिम व्याख्या करने का अधिकार है। संविधान की अन्तिम व्याख्या करने वाली संस्था होने के कारण इसको संविधान की ही व्याख्या करने का अधिकार नहीं है बल्कि संघ, राज्यों और स्थानीय संस्थाओं के कानूनों की व्याख्या करने का भी अधिकार है। अपने प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र के अधीन यह उन सब झगड़ों को निपटाता है जो संघ और राज्यों में आपस में

होते हैं। इसके अपीलीय क्षेत्र में केवल संवैधानिक मुकद्दमें ही नहीं बल्कि दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमें आते हैं। अपीलों की आज्ञा देने के विशेष अधिकार में इसकी यह शक्ति है कि वह देश के किसी भी न्यायालय के निर्णयों पर विचार कर सकता है। कई अवस्थाओं में यह न्यायालय राष्ट्रपति को परामर्श भी देता है।

इस न्यायालय के पास किए गए कानून भारत के प्रत्येक न्यायालय पर लागू होते हैं। इसके आदेश सारे देश पर लागू होते हैं और यह किसी भी व्यक्ति को किसी अभिलेख या किसी भी कागज को पेश करने के आदेश दे सकता है। सर्वोच्च न्यायालय संसद और राज्यों के विधानमण्डलों को मनमानी करने से रोकता है और उनके बनाए हुए कानूनों या आदेशों को असंवैधानिक घोषित करके रद्द कर सकता है। हमारे मौलिक अधिकारों की रक्षा करता है। संविधान द्वारा सर्वोंच्च न्यायालय को इतनी अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं कि यह मौलिक अधिकारों का ही रक्षक ही नहीं बल्कि संविधान और देश के कानून का भी रक्षक है। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर (Shri Alladi Krishana Swami Ayyar) के अनुसार, ''भारतीय संविधान का विकास काफी सीमा तक सर्वोच्च न्यायालय के कार्यों तथा इस बात पर निर्भर करता है कि सर्वोच्च न्यायालय संविधान को किस दिशा में ले जाता है।'' (The future evolution of the Indian Constitution will thus depend to a large extent upon the work of Supreme Court and the direction given to it by that Court.) एम.वी. पायली (M.V. Pylee) ने सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति के बारे में लिखा है कि ''अपनी विभिन्न तथा व्यापक शक्तियों के कारण सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक क्षेत्र में ने केवल एक सर्वश्रेष्ठ संस्था है, बल्कि यह देश के संविधान तथा कानून का भी रक्षक है।'' (The Combination of Such wide and varied Powers in the Supreme Court of India makes it not only the supreme authority in the judicial field but also the guardian of the Constitution and law of the land.)

सर्वोच्च न्यायालय का प्रमुख कर्त्तव्य कानूनों की वैधता निश्चित करना और संविधान की व्याख्या करना होता है। इस सम्बन्ध में भारत के सर्वोच्च न्यायालय का कार्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से भिन्न है। अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की व्याख्या करने की अपनी शक्ति की, 'कानून की उचित प्रक्रिया' (Due Process of Law) के वाक्यांश की इस प्रकार व्याख्या की है कि सर्वोच्च न्यायालय वास्तव में व्यवस्थापिका की तीसरा सदन ही श्रेष्ठ व्यवस्थापिका बन चुका है। भारत के संविधान बनाने वालों ने कानून की उचित विधि की धारा को अपना कर 'कानून द्वारा स्थापित विधि' (Procedure establishment by Law) का वाक्यांश अपनाया है। इसके द्वारा हमारा सर्वोच्च न्यायालय केवल कानून लागू करने वाली संस्था है। यी कोई एक अतिरिक्त विधानसभा नहीं कहला सकता। यह तो केवल उस समय किसी कानून को अवैध घोषित कर सकता है, जब वह संविधान का उल्लंघन करता हो। किसी कानून के केवल बुरा होने के कारण हमारा सर्वोच्च न्यायालय उसे अवैध घोषित नहीं कर सकता। इस प्रकार हमारे देश में न्यायिक सर्वोच्चता (Judicial Supremacy) के सिद्धान्त के विकास की सम्भावना नहीं। हमारे सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार ''भारत की न्यायापालिका की स्थिति इंग्लैंड के न्यायालयों और अमेरिका के न्यायालयों की स्थिति के बीच है।''

वास्तव में हमारे सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति का उद्देश्य वैधानिक कार्यों कर अपेक्षा कार्यपालिका के अत्याचारों और अधिकार चेष्टाओं पर प्रतिबन्ध लगाना है। यह तो केवल यह देखता है कि न तो संसद और न ही कार्यपालिका संविधान द्वारा निश्चित क्षेत्राधिकार का उल्लंघन करे।

### 2.3.5 भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन (The Judicial Review in India)

न्यायिक पुनर्विलोकन शक्ति का अभिप्राय है – कानूनों की वैधानिकता के परीक्षण की शक्ति। भारतीय संविधान के

कुछ अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान करते हैं लेकिन भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन का क्षेत्र इतना व्यापक नहीं है जितना संयुक्त राज्य अमेरिका में है। भारतीय संविधान–निर्माताओं ने अमेरिकन संविधान की शब्दावली 'कानून की सम्यक् प्रक्रिया' (Due Process of Law) के स्थान पर कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया (Procedure Established by Law) को स्वीकार किया है। अमेरिका में कोई कानून यदि वह प्राकृतिक न्याय के कुछ सर्वमान्य सिद्धान्तों के विरूद्ध हो, तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है। किन्तु ऐसा भारत में नहीं है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय यह निश्चित करने में अमुक कानून संवैधानिक है या नहीं, प्राकृतिक न्याय सिद्धान्तों का या उचित अनुचित की अपनी धारणाओं की नहीं अपना सकता है। दूसरे शब्दों में, भारत में न्यायालय किसी कानून को अवैधानिक तभी ठहरा सकता है जबकि सम्बन्धित विधानमण्डल ने उस कानून का निर्माण करने में अपनी कानून–निर्माण क्षमता का उल्लंघन किया हो। भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन की सीमाओं को स्पष्ट करते हुए एच.एम. सीरबाई ने लिखा है – ''भारत में किसी कानून को केवल इस आधार पर अवैधानिक घोंषित नहीं किया जा सकता कि वह न्यायालय की सम्मति में स्वतन्त्रता अथवा संविधान की भावना के किसी सिद्धान्त का अतिक्रमण करता है, जब तक कि वे सिद्धान्त संविधान में उल्लेखित न हों। किसी कानून की सांविधानिकता पर निर्णय देने न्यायालय को कानून की बुद्धिमत्ता या बुद्धिहीनता, उसके न्याय कानून और अन्याय से कोई सम्बन्ध नहीं है।'' अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय 'कानून की उचित प्रक्रिया' वाली धारा के आधार पर लगभग एक 'तीसरा सदन' अथवा 'उच्च विधानमण्डल' की (Third House or Super Legistature) बन गया है। जैसा कि न्यायाधीश ह्यूज ने लिखा है – हम एक संविधान के अन्तर्गत तो रहते हैं, लेकिन संविधान वैसा ही है जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय कहता है।'' भारत के सर्वोच्च न्यायालय को निश्चित रूप से ऐसी स्थिति प्राप्त नहीं है। अमेरिका में 'न्यायिक सर्वोच्चता' को अपनाया गया है जबकि भारत में न्यायिक सर्वोच्चता और संसदीय सर्वोच्चता के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है अर्थात् अमेरिकन सिद्धान्त और ब्रिटिश सिद्धान्त को मिलाने का प्रयत्न किया गया है।

### न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का संविधान में उल्लेख

भारतीय संविधान में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का उल्लेख निम्नलिखित अनुच्छेदों में मिलता है –

(अ) अनुच्छेद 12 (2) (मूल अधिकारों वाला भाग)

(ब) अनुच्छेद 246 (जिसमें संघ एवं राज्यों के विधायी क्षेत्रों में कानून बनाने की शक्तियों का उल्लेख है)

(स) अनुच्छेद 32 (जिसमें नागरिकों के सांविधानिक उपचारों के अधिकार का उल्लेख है)

(द) अनुच्छेद 131 एवं 132 (जिनमें उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार तथा सांविधानिक मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार का उल्लेख है)।

(अ) अनुच्छेद 13 (2) के अनुसार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति – इस अनुच्छेद में लिखा है कि ''राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बनाएंगे जो इस भाग (मूल अधिकारों वाला भाग तीन) द्वारा दिए गए अधिकारों को छीनता या कम करता हो और इस खण्ड का उल्लंघन करने वाला प्रत्येक कानून उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होगा।'' इसका अर्थ यह हुआ कि अनुच्छेद द्वारा किए गए कार्यों को उच्चतम न्यायालय इस आधार पर देख सकता है कि वे अनुच्छेद 13(2) के अनुकूल है या नहीं, और यदि वे अनुकूल नहीं है तो उन्हें असांविधानिक घोषित कर सकता है। संविधान के 24वें संशोधन 1971 से पूर्व यह अनुच्छेद देश की राजनीति में तूफान लाने वाला सिद्ध हुआ। अनेक बार उच्चतम न्यायालय के निर्णय एक समान नहीं रहे। 1952 में पहली बार शंकरी प्रसाद के मामले में उच्चतम न्यायालय ने सर्वसम्मति से यह स्वीकार किया कि संसद मूल अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती

है। 1965 में सज्जन सिंह के मामले में 2/3 के बहुमत से उपर्युक्त निर्णय का पुनः समर्थन किया गया। लेकिन 1967 में गोलकनाथ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने पहले के निर्णय को उलट दिया। इस मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय ने सदा के लिए मूल अधिकारों का संशोधन–शक्ति से परे कर दिया। यह निर्णय 6–5 के अनुपात से लिया गया।

उच्चतम न्यायालय के गोकलनाथ विवाद पर दिए गये निर्णय के बड़े दूरगामी और क्रान्तिकारी परिणाम निकले। देश के संविधान को दी गई चुनौतियों के नए उत्तर दिए गए। परिणामस्वरूप तेजी से बदलते हुए राजनीतिक सन्दर्भ में चौबीसवां संशोधन अधिनियम, 1971 पारित किया गया। संसद को मूल अधिकारों के अध्याय में संशोधन करने का अधिकार या नहीं, इस प्रश्न पर विवाद समाप्त हो गया। यह निश्चित कर दिया गया कि संसद को संविधान के किसी भी उपबन्ध को, जिसमें मौलिक अधिकार भी आते हैं, संशोधित करने का अधिकार होगा। चौबीसवें संशोधन के फलस्वरूप न्यायिक पुनर्विलोकन के क्षेत्र में एक अस्पष्टता दूर हो गई। 1973 में उच्चतम न्यायालय द्वारा भी अपने निर्णय में इस सांविधानिक संशोधन की वैधता को स्वीकार कर लिया गया।

(ब) अनुच्छेद 246 के अनुसार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति – यह अनुच्छेद भी उच्चतम न्यायालय के न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार को प्रकट करता है। इसमें संघ एवं राज्यों के विधायी क्षेत्रों में कानून बनाने की शक्तियों का उल्लेख है। चूंकि संघ और राज्यों की विधायी सीमा का उल्लेख कर दिया गया है, अतः किसी भी पक्ष द्वारा इस सीमा का उल्लंघन एक असांविधानिक कार्य माना जाता है और उच्चतम न्यायालय अपनी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग कर उसे असांविधानिक घोषिक कर सकता है। चूंकि तीनों सूचियों में शक्तियों के वितरण की स्पष्ट व्यवस्था है और सभी परिस्थितियों का संविधान में यथासाध्य उल्लेख कर दिया गया है, अतः उच्चतम न्यायालय को अपना विवेक प्रयोग करने का आधार बहुत कम मिल पाता है अर्थात् उसे 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के अनुसार ही किसी भी कार्य की वैधता की जांच करनी होती है, इसके विपरित अमेरिका में उच्चतम न्यायालय को अपने विवेक का प्रयोग करने के अवसर बहुत अधिक मिलते हैं क्योंकि वहां संविधान में संघ राज्य सम्बन्धों का वर्णन बहुत संक्षेप में किया गया है और अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों में निहित है। इसलिए वहाँ इस प्रकार के विवाद उठते रहते हैं कि संघ राज्यों की अवशिष्ट शक्तियों का उल्लंघन कर रहा है या नहीं।

(स) अनुच्छेद 32 के अनुसार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति – इस अनुच्छेद में नागरिकों के सांविधानिक उपचारों के अधिकार का उल्लेख किया गया है। कोई भी नागरिक यदि अनुभव करे कि उसके मूल अधिकार का विशुद्ध रूप से उल्लंघन हुआ है तो वह उच्चतम न्यायालय की शरण ले सकता है। उच्चतम न्यायालय को यह देखने का अधिकार होगा कि क्या वास्तव में राज्य के किसी कार्य या कानून से विशुद्ध रूप से नागरिक के मूल अधिकार का उल्लंघन हुआ है। मूल अधिकारों की सुरक्षा के लिए ही उच्चतम न्यायालय को अनुच्छेद 32(2) के अन्तर्गत प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण और अधिकार–पृच्छा लेख निकालने का अधिकार है। ये लेख या आदेश 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के अनुसार ही निकाले जाते हैं, अमेरिका की तरह 'प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त' के अनुसार नहीं। वास्तव में इन रिटों (Writs) के रूप में न्याय–प्रशासन की एक नई शाखा का विकास हुआ है।

(द) अनुच्छेद 131 एवं 132 के अनुसार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति–अनुच्छेद 131 में उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार का और अनुच्छेद 132 में, सांविधानिक मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार का उल्लेख किया गया है अर्थात् ये दोनों अनुच्छेदों उच्चतम न्यायालय को संघीय और राज्य सरकारों द्वारा निर्मित विधियों के पुनर्विलोकन का अधिकार देते हैं।

इस सम्पूर्ण विवेचना से स्पष्ट है कि संयुक्त राज्य अमेरिका की भांति ही भारत में भी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का अधिकार का प्रयोग 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के ही अनुसार कर सकता है। संविधान के लागू होने के बाद से अब तक उच्चतम न्यायालय ने इस शक्ति का प्रयोग करके अनेक महत्त्वपूर्ण कानूनों का या अध्यादेशों, नियमों या विनिमयों को पूर्णतया या आंशिक रूप से असांविधानिक घोषित किया है।

### 38वें संविधान संशोधन तक की स्थिति

संविधान के 38वें संशोधन अधिनियम, 1975 द्वारा यह व्यवस्था कर दी गई है कि आपातकालीन स्थिति की घोषणा के राष्ट्रपति के अधिकार को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है। इस संशोधन ने राष्ट्रपति, राज्यपाल और उपराज्यपालों द्वारा उदघ्घोषित आपातकालीन स्थिति वाले अध्यादेश को न्यायालय की सुनवाई के क्षेत्राधिकार से अलग कर दिया। 29वें संशोधन अधिनियम, 1975 द्वारा राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और संसद के अध्यक्ष के चुनावों पर विचार करने के न्यायालय के अधिकार समाप्त कर दिए गए। 40वें संविधान अधिनियम, 1976 के द्वारा प्रधानमंत्री को भी राष्ट्रपति और राज्यपालों की तरह दण्डिका तथा दीवानी कार्यवाहियों से विमुक्ति प्रदान कर दी गई।

42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा उच्चतम न्यायालय की पुनर्विलोकन की शक्ति को और सीमित कर दिया गया तथा न्यायिक पुनर्विलोकन की प्रक्रिया का कठिन बना दिया गया। लेकिन 1980 में उच्चतम न्यायालय मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ के विवाद में 42वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 368 में शामिल किए गए खण्ड (4) और (5) को अवैध घोषित करके संसद की संविधान को असीमित रूप से संशोधित करने की शक्ति पर प्रश्न–वाचक चिन्ह लगा दिया। लेकिन 43वें सांविधानिक संशोधन ने न्यायिक पुनर्विलोकन सम्बन्धी प्रावधानों को समाप्त कर दिया और न्यायिक पुनर्विलोकन के सम्बन्ध में पुनः वही स्थिति हो गई जो 42वें सांविधानिक संशोधन के पूर्व थी।

### उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने ही निर्णयों पर पुनर्विचार

उच्चतम न्यायालय को, संविधान के अनुच्छेद 137 के अन्तर्गत अपने निर्णयों और आदेशों का पुनर्विलोकन करने की शक्ति प्राप्त है। न्यायालय को यह सत्ता प्रदान करने मं संविधान–निर्माताओं ने अपनी बुद्धिमत्ता और सर्तकता का परिचय दिया है। ''कहा जाता है कि निम्न न्यायालय का सम्बन्ध तथ्यों से है, उच्च न्यायालय का सम्बन्ध त्रुटियों (निम्न न्यायालय द्वारा निर्णय की त्रुटियों) से है तथा उच्चतम न्यायालय का सम्बन्ध विवेक बुद्धि (Wisdom) से है। किन्तु उच्चतम न्यायालय भी गलती कर सकता है इसलिए आवश्यक है कि उस त्रुटि को ठीक करने की राह खुली रखी जाए।''

## 2.3.6 न्यायपालिका की स्वतन्त्रता (Independence of the Judiciary)

एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायपालिका ही नागरिकों के अधिकारों और संविधान की संरक्षिका हो सकती है। भारतीय संविधान में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को कायम रखने के लिए निम्नलिखित उपबन्धों का समावेश किया गया है –

1. पदावधि की सुरक्षा – एक बार नियुक्त किए जाने के उपरान्त न्यायाधीशों को, उनके स्वैच्छिक त्याग–पत्र के अलावा, महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा हटाया जा सकता है। यह विशेष प्रक्रिया अत्यन्त कठिन है, अतः न्यायाधीश को पद से हटाना कोई सरल कार्य नहीं है।

2. न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते आदि विधायिका के अधिकार से परे होना – उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन संविधान द्वारा नियत है औश्र भारत की संचित निधि पर भारित हैं। उन पर संसद में मतदान नहीं हो सकता है। न्यायाधीशों के कार्यकाल के दौरान उनके वेतन और भत्तों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। वित्तीय आपात

की स्थिति ही इसका अपवाद है। साथ ही यह भी व्यवस्था है कि उच्चतम न्यायालय का कोई अवकाश प्राप्त न्यायाधीश देश के किसी न्यायालय में अथवा किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष वकालत नहीं कर सकता है।

3. कार्य प्रणाली के नियमन हेतु नियम बनाने की शक्ति – उच्चतम न्यायालय को अपनी कार्य–प्रणाली के नियमों हेतु स्वयं ही नियम बनाने का अधिकार है। यह आवश्यक है कि ये नियम संसद द्वारा निर्मित विधि के अर्न्तगत होने चाहिए और इन पर राष्ट्रपति की अनुमति ली जानी चाहिए। उच्चतम न्यायालय के निर्णय या आदेश भारत राज्य क्षेत्र के भीतर सभी न्यायाधीशों को मान्य होंगे।

4. कर्मचारी वर्ग पर नियन्त्रण – उच्चतम न्यायालय को अपने कर्मचारी वर्ग पर पूरा नियन्त्रण सौंपा गया है, क्योंकि इसके अभाव में उसकी स्वतन्त्रता को आघात पहुंच सकता है। न्यायालय के सभी अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों द्वारा की जाती है। सेवा शर्तें भी न्यायालय द्वारा ही निर्धारित की जाती है।

5. संसद क्षेत्राधिकार बढ़ा सकती है, घटा नहीं सकती – संसद को उच्चतम न्यायालय की शक्ति और क्षेत्राधिकार को बढ़ाने का अधिकार है, घटाने का नहीं। इस प्रकार उच्चतम न्यायालय को संसदीय दबाव से मुक्त रखा गया है।

6. उन्मुक्तियां – अपनी अधिकारिक क्षमता में किए गए न्यायालयों के निर्णयों और कार्य की अवहेलना नहीं की जा सकती। संसद भी न्यायाधीशों के ऐसे कार्यों पर जिसे उन्होंने कर्त्तव्य–पालन करते हुए किया हो, विचार–विमर्श नहीं कर सकती।

7. अवकाश प्राप्त करने के बाद वकालत करने पर प्रतिबन्ध – अवकाश प्राप्ति के बाद न्यायाधीश भारतीय क्षेत्र में किसी भी न्यायालय या अधिकारी के समक्ष वकालत नहीं कर सकते हैं। किन्तु संविधान विशेष प्रकार के कार्य–सम्पादन के लिए उनकी नियुक्ति की अनुमति देता है, उदाहरणार्थ विशेष जांच पड़ताल तथा अन्वेषण करना।

### 2.3.7 निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस तरह हमारे संविधान में उच्चतम न्यायालय की स्थिति बड़ी मजबूत है और उसकी स्वतन्त्रता पर्याप्त रूप से संरक्षित है। किन्तु सेवानिवष्त न्यायाधीशों का आयोग एवं समितियों के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किये जाने की वर्तमान प्रथा से न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को खतरा उत्पन्न हो सकता है। भारतीय विधि आयोग ने इस प्रथा के संकटों के बारे में संकेत करते हुए इसे शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने की सरकार से सिफारिश की है।

### 2.3.8 मुख्य शब्दावली

- उच्चतम न्यायालय
- न्यायिक पुनरावलोकन
- क्षेत्राधिकार
- उन्मुक्तियाँ
- परामर्श शक्तियाँ

### 2.3.9 अभ्यास हेतू प्रश्न

1. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए क्या–क्या योग्यताएँ होनी चाहिए?

2. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

3. सर्वोच्च न्यायालय के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार कौन–कौन से हैं? किस क्षेत्र में इसे सबसे अधिक अधिकार हैं?

4. न्यायिक पुनरावलोकन से आप क्या समझते हैं? इसका संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

### 2.3.10 संदर्भ सूची


- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.

- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

## 2.4 राजनैतिक दल : राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दल (Political Parties : National and Regional)

### 2.4.1 परिचय

आधुनिक युग लोकतन्त्रीय युग है। लोकतन्त्रीय शासन को लोगों का, लोगों के लिए और लोगों द्वारा माना गया है। लोकतन्त्र में प्रभुसत्ता किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के समूह के पास नहीं होती, अपितु समूची जनता के पास होती है। राजनीतिक दलों के बिना जनता की प्रभुसत्ता का निर्णय नहीं हो सकता और न ही बहुमत का राज्य स्थापित हो सकता है। राजनीतिक दलों द्वारा जनता अप्रत्यक्ष रूप में शासन में भाग ले सकती हैं और राजनीतिक दलों के बिना लोकतन्त्र की सम्भावना नहीं हो सकती। स्वतन्त्र भारत में भी लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली को अपनाया है। इसलिए भारत में भी राजनीतिक दलों का विकास होना स्वाभाविक था। भारत में कुछ राजनीतिक दल ऐसे हैं, जिनका जन्म स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् हुआ और कुछ राजनीतिक दल ऐसे हैं जो अंग्रेजों के राज्यकाल के समय में अस्तित्व में आए थे।

### 2.4.2 उद्देश्य

- दलीय व्यवस्था की परिभाषा एवं क्षेत्रीय तथा राज्य की पार्टियों को जानना।
- राजनैतिक दलों के संगठन व समस्याओं को समझना।
- दलीय व्यवस्था और राजनैतिक दलों की परिभाषा दे सकेंगे।
- भारत में दलीय व्यवस्था एवं राजनीतिक दलों की प्रमुख विशेषताओं को समझा सकेंगे।
- राजनीतिक दल, दलीय व्यवस्था एवं लोकतंत्र के बीच संबंधों की व्याख्या कर सकेंगे।

### 2.4.3 भारत में दल व्यवस्था (Party System in India)

भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय प्रभावकारी दलों के संगठन की आवश्यकता महसूस हुई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक विशेष अस्तित्व वाले संगठन के रूप में पैदा हुई जिसने देश में अंग्रेज विरोधी तत्वों को एकत्रित किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस दल ने एक राजनीतिक दल के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया, यद्यपि महात्मा गांधी चाहते थे कि यह केवल समाज सेवा संगठन के रूप में कार्य करें। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश की राजनीति में कांग्रेस दल की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण थी कि भारत का प्रायः एक प्रभुत्वशाली दलीय व्यवस्था के रूप में वर्णन किया गया। कांग्रेस आम जनता का सर्वप्रिय दल था तथा इसके योजना कार्य में सब कुछ सम्मिलित था। प्रायः इसको भारतीय समाज का लघुरूप माना जाता था, जिसमें राष्ट्र के समस्त तत्वों का प्रतिबिम्ब था।

परन्तु इससे हमें गलत परिणामों पर नहीं पहुंचना चाहिए। कांग्रेस में ही विभिन्न तत्व विद्यमान थे, जो महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अलग–अलग विचार रखते थे। कांग्रेस दल जो आन्दोलन दल से एक राजनीतिक दल में बदल गया था, चाहता सब विभिन्न तत्वों को अपने विशालतम संगठन में समा सकता था। इसके बाद कांग्रेस दल एक केन्द्रीय दल बन गया जिसमें वामपन्थी और दक्षिणपन्थी राजनीति साथ–साथ शामिल थी। इसने दल में एक आन्तरिक शोधक रचना का गठन किया। जिसमें कांग्रेस की बाहरी परिस्थितियों के अनुसार इनके भिन्न–भिन्न तत्व एक–दूसरे में घुल–मिल सकते थे।

यह एक तथ्य है कि भारत में कांग्रेस का प्रभाव सम्पूर्ण नहीं था। यद्यपि लोकसभा में कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त था फिर भी कभी भी राष्ट्रीय चुनावों में इसे सार्वजनिक मतों का बहुमत नहीं मिला। दूसरी और विरोधी दलों को लोकसभा में यद्यपि कम स्थान प्राप्त थे, परन्तु उनके पीछे मतदाताओं की पर्याप्त शक्ति थी और राज्य स्तर पर कांग्रेस का प्रभाव और भी कम था। भारत में विरोध विशेषतः सरकार का विरोध था। कांग्रेस दल सत्तारूढ़ दल था अतः विरोध का अभिप्राय कांग्रेस के विरोध से था। विरोधी पक्ष का प्रयास मुख्यतः कांग्रेस की आलोचना करना तथा इसको सत्ता से हटाना था।

### 2.4.4. दलीय व्यवस्था की विशेषताएँ

भारतीय दलीय व्यवस्था में तीन अवसर ऐसे आए हैं, जब इसमें मूलभूत परिवर्तन घटित हुए। उदाहरणतः 1977 में विरोधी दलों द्वारा संचालित जनता सरकार का केन्द्र में सत्तारूढ़ होना। इससे पहले 1967 में लगभग 8 राज्यों में (हरियाणा सहित) पहली बार विरोधी दलों ने अपनी सरकारें बनाई जो कांग्रेस पार्टी के एकाधिकार को एक गहरा झटका माना गया। 1987 में भी एक बार विरोधी दलों नें मिलकर राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार स्थापित की। 1991 में कांग्रेस राष्ट्रीय सत्ता से हाथ धो बैठी और ढेर सारी विरोधी दलों के गठबन्धन की सरकार बनी जो 2003 तक चल रही है। इस प्रकार एकल दल आधिपत्य टूटकर बहुल–दलीय व्यवस्था का पर्दापण हो गया है। इस परिपेक्ष में भारतीय दल व्यवस्था की विशेषताएँ निम्न है :–

(I) बहुदलीय पद्धति :– 1977 तक कांग्रेस का आधिपत्य रहा। परन्तु 1980 में फिर कांग्रेस पार्टी का एकाधिकार स्थापित हो गया। 1989 में फिर मिली जुली सरकार बनी, जिसमें कई विरोधी दल शामिल थे, परन्तु 1991 के पश्चात् कांग्रेस दल की प्रधानता का श्रीगणेश हुआ जो 1996 को चुनाव गहरी जड़े पकड़ गया और वर्तमान राष्ट्रीय प्रजातान्त्रिक मार्चे की सरकारी (2003) में 24 दल शामिल थे।

1999 के लोकसभा चुनावों में राजनैतिक दलों की संख्या 654 से अधिक हो गई है।

(II) व्यक्तिगत नेतृत्व पर आधारित :– 1951 से 1964 तक कांग्रेस में जवाहर लाल नेहरू की प्रधानता रही। 1970–76 और 1980–84 में इन्दिरा गांधी का व्यक्तित्व पार्टी में छाया रहा। 1984 के बाद राजीव गांधी का प्रभाव रहा। 1991 के पश्चात् अटल बिहारी के व्यक्तित्व पर भारतीय जनता पार्टी टिकी हुई है। उधर विरोधी दल कांग्रेस में सोनिया गांधी का ही प्रभाव है।

(III) राजनैतिक दलों में निरन्तर विभाजन एवं विघटन की प्रवृत्ति :– अब तक कांग्रेस पार्टी तीन बार विभाजित हो चुकी है। 1969 में कांग्रेस (ओ) और कांग्रेस (आई), 1977 में गठित जनता पार्टी विभाजित होकर चार अन्य पार्टियों में बँट गई। 1978 और 1995 में कांग्रेस में पुनः विघटन हुआ। जनता दल का विभाजन सबसे अधिक और अति शीघ्रता से हुआ है। अन्य प्रमुख दलों में भी विघटन हुआ है।

(IV) अवसरवादिता की उभरती प्रवृत्ति :– भारतीय राजनीति में अवसरवादिता सदैव से विद्यमान रही है और अभी हाल ही के वर्षों में यह निरन्तर उग्र रूप ग्रहण कर रही है। रजनी कोठारी के अनुसार, ''व्यक्ति का महत्व अभी भी राजनीति में बहुत है। भारत में एक ही संगठन के अभिन्न अंग अलग–अलग काम करते हैं। एक ही दल के राष्ट्रीय और राज्य शाखाएँ प्रतिकूल दिशाओं में चलती है और ऐसे गुटों व तत्वों से हाथ मिलाती हैं जो विचारधारा और नीति में उनसे भिन्न हैं।'' जनवरी 1980 के केरल विधानसभा चुनावों में इन्दिरा कांग्रेस और जनता पार्टी ने परस्पर सहयोग करते हुए एक ही फ्रन्ट के अन्तर्गत चुनाव लड़ा, जबकि राष्ट्रीय स्तर पर ये दल एक–दूसरे के कट्टर विरोधी थे और हैं। इस प्रकार की अवसरवादिता के अन्य अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं।

(V) राजनीतिक दलों की नीतियों और कार्यक्रम में स्पष्ट भेद का अभाव :– भारत के राजनीतिक दलों की नीतियों और कार्यक्रमों में स्पष्ट भेद का अभाव है और इसी कारण वे जनता के सम्मुख स्पष्ट विकल्प प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे हैं। इस प्रकार के विचार भेद के अभाव का एक कारण यह है कि आज भारत के राजनीतिक रंगमंच पर जितने भी पात्र दृष्टिगोचर होते हैं, उन सबको राजनीतिक प्रशिक्षण राष्ट्रीय आन्दोलन में ही प्राप्त हुआ है, लेकिन इसका द्वितीय और अधिक प्रमुख कार यह है कि स्वयं राजनीतिक दलों की नीतियाँ और कार्यक्रम अत्यधिक अस्पष्ट और अनिश्चित हैं। कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य लगभग एक दर्जन छोटे–बड़े राजनीतिक दल भी समाजवाद को ही अपना लक्ष्य घोषित किये हुए हैं। अनेक राजनीतिक दलों के पास अपना कोई निश्चित कार्यक्रम न होने के कारण उनके द्वारा विध्वंसकारी कार्यों का आश्रय लिया जाता है और विघटनकारी तत्वों को प्रोत्साहित किया जाता है।

(V) साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय दल :– भारत में अनेक राजनीतिक दल साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय आधार पर गठित है। ऐसे दलों में अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (A.D.M.K.), द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (D.M.K.), अकाली दल, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, मुस्लिम मजलिस, नेशनल कांफ्रेंस, असम गण परिषद, सिक्किम संग्राम परिषद और अन्य अनेक दलों का नाम लिया जा सकता है। नागालैण्ड, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम प्रदेश और अरूणाचल प्रदेश में तो नागालैण्ड लोकतान्त्रिक दल और मणिपुर पीपुल्स पार्टी आदि ही प्रभावशाली है और अखिल भारतीय दलों का प्रभाव लगभग नगण्य है। लोकसभा चुनावों में अपनी शक्ति का परिचय देने में सफल रहते हैं। 1989–2002 में शिव सेना ने भी अपनी शक्ति में पर्याप्त वृद्धि की जो एक साम्प्रदायिक दल है तथा क्षेत्रीय भी।

(VI) राजनीतिक दलों की आन्तरिक गुटबन्दी :– भारत की दल प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता विभिन्न दलों की आन्तरिक गुटबन्दी है। लगभग सभी राजनीतिक दलों में छोटे–छोटे गुट पाये जाते हैं, एक वह गुट जो सत्ता में है और दूसरा असन्तुष्ट है। इन गुटों में पारस्परिक मतभेद इस सीमा तक पाया जाता है कि कभी–कभी निर्वाचन में एक गुट के समर्थन प्राप्त उम्मीदवार को दूसरे गुट के सदस्य पराजित करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। दल में आन्तरिक गुटबन्दी कांग्रेस दल में सबसे ज्यादा पायी जाती है क्योंकि इसमें सत्ता के लिए निरन्तर संघर्ष चलता रहा है जिसका प्रभाव सम्पूर्ण दल की प्रगति पर पड़ता है। अन्य राजनीतिक दलों में भी स्थिति यही है। 1996 में सत्तारूढ़ जनता दल या संयुक्त मोर्चे के अन्य घटक भी गुटबन्दी से मुक्त नहीं हैं। इस प्रकार की गुटबन्दी पश्चिमी देशों के राजनीतिक दलों में नहीं पायी जाती है। शासक दल और अन्य दलों में गुटबन्दी की यह स्थिति भारतीय राजनीति का अभिशाप बनी हुई है।

(VII) राजनीतिक दल–बदल :– भारत में दल–बदल की स्थिति सदैव से विद्यमान रही है, लेकिन 1967 से 1970 के वर्षों में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक भीषण रूप में देखी गयी। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्य प्रदेश, आदि राज्यों में विशेष रूप से यह प्रवृत्ति देखी गयी कि एक राजनीतिक दल के सदस्य के रूप में निर्वाचित विधानसभा के सदस्यों द्वारा अपने निर्वाचकों की अनुमति प्राप्त किये बिना ही विधानसभा में अपने राजनीतिक दलों की सदस्यता में परिवर्तन कर लिया गया। इस प्रकार के दल परिवर्तन के परिणामस्वरूप इन राज्यों में बहुत जल्दी–जल्दी सरकारों का पतन हुआ और राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो गई। 1991–92 के दौरान दल–बदल की घटनाएँ काफी बैठी। 1998 में उत्तर प्रदेश में जगदम्बिका पाल और कल्याण सिंह ने दल–बदल का नया इतिहास रचा। 1999 में हरियाणा में बंसीलाल सरकार देखते ही देखते दल–बदल की भेंट चढ़ गई और इसका लाभ औमप्रकाश चौटाला को मिला।

(VIII) निर्दलीय सदस्यों की संख्या में कमी :– 1952 के लोकसभा चुनाव में निर्दलीय सदस्यों की संख्या 849 थी, जो 1996 में बढ़कर 10535 हो गई, परन्तु 1998–99 में चुनाव सुधार के सख्त प्रावधानों के कारण इस समस्या में भारी कमी आई और ये केवल 1915 ही रह गए।

### 2.4.5 राजनैतिक दलों की समस्याएँ

भारत में राजनैतिक दलों की मुख्य समस्याएँ निम्नलिखित हैं:–

(1) संगठनात्मक समस्याएँ : भारत में बहुल राजनैतिक व्यवस्था है। जिसमें विभिन्न जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति के लोग रहते हैं। धर्मनिरपेक्षता की दृष्टि से व्यवस्था को चलाना सम्भव नहीं माना जाता, जिससे दलों के संगठन प्रभावशाली एवं मजबूत नहीं हो पाते। इसी कारण दलों में विभाजन एवं विघटन हो जाते हैं। क्षेत्रीय दल भी इससे अछूत नहीं रहे।

(2) दल–बदल : भारत में दल–बदल एक सामान्य सी बात है। दल–बदल देश में राजनीतिक स्थिरता को क्षति पहुंचाने के साथ–साथ प्रशासन तथा संसदीय संस्थाओं में लोगों के विश्वास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। यह दल–बदल 1967 से 1968 तक लगभग 16 सरकारों के पतन के उत्तरदायी है। दल–बदल स्वस्थ दल प्रणाली के विकास में एक बाधा है।

(3) वित्त साधन : भारत में राजनीतिक दल सामान्यतः अपना वित्तीय लेखा–जोखा, यहाँ तक कि सदस्य तथा कोष संचालन के साधनों से प्राप्त धन का ब्यौरा भी नहीं छापते।

व्यवहारिक रूप से सभी राजनीतिक दलों की आय का सामान्य स्रोत संसद तथा राज्य विधानसभाओं के सदस्यों पर लगाया गया चन्दा है। सभी राजनीतिक दलों की आय के मुख्य स्रोत दान थैलियाँ तथा कोष संचालन भी है। 1956 के कम्पनी अधिनियम ने पहली बार राजनीतिक चन्दों के साथ दान तथा अन्य को कोषों के योगदान की सीमित कर दिया। कम्पनियों द्वारा राजनीतिक दलों को दान देने पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए एक विधेयक 1968 में पारित किया गया, परन्तु राजनीतिक दलों के वित्त साधनों की गति लगातार पूर्ववत् चलती रही। आय का एक कम विवादास्पद तरीका दल के नेताओं को प्राप्त थैलियाँ हैं। ये स्थानीय दल कार्यकर्त्ताओं द्वारा जनता तथा व्यापारी लोगों से सामान्यतः एकत्र की जाती हैं तथा अक्सर चुनावों के समय नेताओं को भेंट कर दी जाती हैं।

(4) नेतृत्व का संकट : राजनीतिक दलों में नेतृत्व का संकट (Crsis of Leadership) पाया जाता है। प्रखर और निर्मल नेतृत्व का अभाव है। राजनीति को हमारे नेताओं ने एक गन्दा खेल बना दिया है। उनमें राजनीतिक अवसरवादिता (Political Opportunism) देखने को मिलती है।

(5) काले धन का प्रभाव : चुनाव बहुत खर्चीले हो जाने से वास्तविक जनसेवी चुनाव मैदान में उतरने से कतराते हैं। दलों को पूंजीपतियों और कम्पनियों से आर्थिक सहायता मिलती रही है। जो लोग धन देते हैं, वे बदले में अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं। पूर्व राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने यह कहा था कि 'एक व्यक्ति चुनाव में लाखों रूपये खर्च करने के बाद ईमानदार हरगिज नहीं रह सकता।' यह एक ऐसा कटु सत्य है जो हमारी राजनीतिक व्यवस्था के खोखलेपन को प्रकट करता है।

(6) जातिवाद और साम्प्रदायिकता : जातिवाद और साम्प्रदायिकता जैसे जीवन मूल्य हमें विरासत में मिले हैं, जिनके कारण हर दल को इन तत्वों के साथ समझौता करना पड़ता है। योग्य उम्मीदवारों की बजाय उन्हें

ऐसे लोगों को चुनावी टिकट देने पड़ते हैं जिनकी जाति वालों का उन चुनावों के क्षेत्र में बाहुल्य हो।

(7) राजनीति का अपराधीकरण : सभी राजनीतिक दलों में अपराधी तत्व घुस आये हैं। अपराधियों ने राजनीतिक नेतृत्व को अपने पंजे में फंसा लिया है। 1966 के लोकसभा चुनाव परिणामों पर टिप्पणी करते हुए इण्डिया टुडे ने लिखा है : किसी भी अपराध का नाम लिजिए और आपको एक–न–एक सांसद मिल सकता है, जिसके ऊपर उसका आरोप लगा होगा। इस मामले में उत्तर प्रदेश सबसे आगे है। चुनाव में रिकार्ड 435 आपराधिक पृष्ठभूमि वाले प्रत्याशी खड़े हुए थे। उनमें से 27 तो संसद में भी पहुंच गए। इस सूची में 14 सांसदों के साथ भाजपा सबसे ऊपर हैं, हालांकि उनमें से ज्यादातर छोटे–मोटे मामलों में आरोपी हैं। सपा के पास आपराधिक रिकार्ड वाले सात सांसद हैं जिनमें से चार हिस्ट्रीशीटर हैं : कांग्रेस के एक और बसपा के तीन सांसदों के नाम आपराधिक मामलों से जुड़े हैं।''

(8) भारत में 'सह–अस्तित्व की संस्कृति' का अभाव है : विधानमण्डल में जब दलों की संख्या अधिक हो जाती है तो कभी–कभी मिले–जुले मन्त्रिमण्डल का गठन करना पड़ता है। मिली–जुली सरकारें तभी ठीक प्रकार चल सकती हैं जबकि विभिन्न घटकों के बीच परस्पर विश्वास हो। भारत का यह दुर्भाग्य रहा है कि हमारे नेता नीतियों के कारण नहीं व्यक्तिगत आधारों पर आपस में लड़ते–झगड़ते रहते हैं। संक्षेप में, देश को सुस्पष्ट विचारधाराओं पर आधारित दो या तीन अखिल भारतीय दलों की आवश्यकता है।

### 2.4.6 भारतीय राजनीतिक दलों का वर्गीकरण (Classification of Indian Political Parties)

भारतीय राजनीतिक दलों का चार भागों में बांटा जा सकता है : (1) राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष दल, (2) क्षेत्रीय अथवा राज्य स्तरीय दल, (3) स्थानीय, किन्तु जातीय साम्प्रदायिक दल और (4) तदर्थ दल।

(1) राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष दल – निर्वाचन आयोग ने राजनीतिक दलों के मान्यता सम्बन्धी नियमों में परिवर्तन के लिए 1968 के चुनाव चिन्ह (आरक्षण एवं आबंटन) आदेश में संशोधन करते हुए 1 दिसम्बर, 2000 को अधिसूचना जारी की है। नए नियमों के तहत राष्ट्रीय स्तर के दल का दर्जा प्राप्त करने के लिए सम्बन्धित राजनीतिक दल को लोकसभा चुनाव अथवा विधानसभा चुनावों के किन्हीं चार अथवा अधिक राज्यों में कुल डाले गए वैध मतों के 6 प्रतिशत मत प्राप्त करने के साथ ही किसी राज्य अथवा राज्यों से लोकसभा की कम–से–कम 4 सीटें जीतनी होंगी अथवा लोकसभा में उसे कम–से–कम 2 प्रतिशत सीटें (मौजूदा 543 सीटों में कम–से–कम 11 सीटें) जीतनी होंगी जो कम–से–कम तीन राज्यों से हासिल की गई हों। ऐसे दल दो प्रकार के हैं – बिना विचारधारा के और विचाराधारा पर आधारित दल। बिना विचारधारा वाले दलों में कांग्रेस को लिया जा सकता है। विचारधारा से अभिप्राय है, किसी विशिष्ट सामाजिक और आर्थिक दर्शन में विश्वास और प्रतिबद्धता व्यक्त करना। कांग्रेस को वैचारिक दृष्टि से तटस्थ दल कहा जा सकता है। कांग्रेस एक ऐसा दल है जिसमें अनेक विचारधारा और हितों के व्यक्ति सम्मिलित हो सकते हैं। इसे दल के बजाय एक सार्वजनिक मंच (प्लेटफार्म) कहा जा सकता है।

विचारधारा में विश्वास करने वाले राष्ट्रीय दलों के दो भागों में विभक्त किया जा सकता है – दक्षिणपंथी और वामपंथी। दक्षिणपंथी दल जहां यथास्थिति को बनाये रखना चाहते हैं, वहां वामपंथी दल आर्थिक और सामाजिक ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन चाहते हैं। स्वतन्त्र दल, जनसंघ और भारतीय जनता पार्टी को दक्षिणपंथी दल कहा जाता था क्योंकि भारतीय परिप्रेक्ष्य में इनके दृष्टिकोण ब्रिटिश अनुदारवादी दल से मिलते–जुलते हैं। वामपंथी दल भी दो प्रकार के हैं – उदार और उग्र। उदार दलों में सभी समाजवादी दलों को लिया जा

सकता है तथा उग्र दलों में सभी प्रकार के साम्यवादी दलों को स्थान दिया जा सकता है। उदारवादी दल, गांधीवाद और फेबियनवादी सिद्धान्तों में विश्वास करते हैं जबकि साम्यवादी दल क्रान्तिकारी साधनों में विश्वास करते हैं। समस्त प्रकार के अखिल भारतीय दलों का दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष है उनकी सदस्यता सभी धर्मों और जातियों के लिए खुली है।

(2) क्षेत्रीय अथवा राज्य स्तरीय दल – ये वे दल हैं जिनका प्रभाव राज्य की सीमा तक ही हैं। राज्य स्तरी य दल का दर्जा प्राप्त करने के लिए सम्बन्धित दल को लोकसभा अथवा विधानसभा चुनाव में डाले गए कुल वैध मतों का कम–से–कम 6 प्रतिशत मत प्राप्त करने के साथ ही राज्य विधानसभा में कम–से–कम दो सीटें जीतना आवश्यक है अथवा विधानसभा की कुल सदस्य संख्या की कम से कम तीन प्रतिशत सीटें अथवा तीन सीटें (इनमें से जो भी अधिक है) जीतना आवश्यक होगा। इनमें तेलगू देशम्, शिव सेना, डी.एम.के., अन्ना डी. एम.के, असम गण परिषद्, सिक्किम संग्राम परिषद्, समाजवादी पार्टी, तमिल मनीला कांग्रेस, तृणमूल कांग्रेस, हरियाणा विकास पार्टी आदि प्रमुख हैं। आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, असम, सिक्किम आदि राज्यों में ये दल प्रभावशाली हैं।

(3) स्थानीय, किन्तु जातीय साम्प्रदायिक दल – कतिपय दल विशेष जाति या सम्प्रदाय तक ही सीमित हैं। केरल की मुस्लिम लीग, महाराष्ट्र की शिव सेना, पंजाब का अकादल दल तथा बिहार की झारखण्ड पार्टी ऐसे ही दल हैं।

(4) तदर्थ दल – भारत में ऐसे भी दल हैं जो बनते और बिगड़ते रहते हैं। इन्हें छोटे–छोटे गुट कहा जा सकता है। ऐसे दलों में कांग्रेस (तिवारी), केरल कांग्रेस, बंगला कांग्रेस, हरियाणा कांग्रेस, जनता पार्टी, रामराज्य परिषद् आदि को याद किया जा सकता है। ऐसे दल कब बन जाते हैं और कब अस्त हो जाते हैं इसका पता लगाना कठिन है। ये विभिन्न दलों से निकले असन्तुष्ट नेताओं द्वारा निर्मित गुट हैं।

## प्रमुख राष्ट्रीय राजनीतिक दल और उनके कार्यक्रम (Major National Parties and their Programmes)

### मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दल एवं उनके चुनाव चिन्ह

| | | |
|---|---|---|
| भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस | कांग्रेस | हाथ का पंजा |
| भारतीय जनता पार्टी | भाजपा | कमल |
| भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी | कम्यु | हंसिया बाली |
| भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) | माकम्यु | हथौड़ा, हंसिया एवं तारा |
| ऑल इंडिया तृणमूल कांग्रेस | | फूल एवं घास |
| राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी | एनसीपी | घड़ी |
| बहुजन समाजपार्टी | बसपा | हाथी |
| नेशनल पीपुल्स पार्टी | एनपीपी | पुस्तक |

इनमें से प्रमुख राष्ट्रीय दलों की विचारधारा, कार्यक्रम, संगठन एवं भूमिका का यही विवेचन करना अपरिहार्य हैं।

## कांग्रेस पार्टी : कांग्रेस (ई) (Congress Party : Congress (I))

कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में हुई। 1907 तक कांग्रेस का लक्ष्य विदेशी शासन पर दबाव डालना मात्र था। सन् 1907 से 1919 तक कांग्रेस उदारवादियों और उग्रवादियों में विभक्त रही। सन् 1920 से 1947 तक कांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गांधी ने किया और देश को स्वाधीनता प्राप्त हुई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त कांग्रेस एक राजनीतिक दल में परिवर्तित हो गयी तथा केन्द्र और राज्यों के निर्वाचनों में प्रचण्ड बहुमत प्राप्त कर सत्ता का उपयोग करने लगी। सन् 1967 के आम चुनाव में कांग्रेस की स्थिति दुर्बल हुई। सन् 1969 में कांग्रेस दो भागों में विभक्त हो गयी तथा 1971 एवं 1972 के निर्वाचनों में कांग्रेस को पुनः प्रचण्ड विजय प्राप्त हुई। श्री हर्षदेव मालवीय ने लिखा है, ''कांग्रेस की भव्य विरासत ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध शानदार संघर्ष और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद समाजवादी भारत तथा जनता के लिए बेहतर जीवन के प्रयास की दिशा में प्राप्त सफलताओं से भरपूर है।''

कांग्रेस किसका प्रतिनिधित्व करती है? इस प्रश्न का जवाब 15 सितम्बर 1931 में ही महात्मा गांधी ने लन्दन में 'फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी' में भाषण के दौरान किया था, ''कांग्रेस मूलतः भारत में 7 लाख गांवों में बसे मूक, अधभूखे करोड़ों लोगों का प्रतिनिधित्व करती है – चाहे वे तथाकथित ब्रिटिश भारत या भारतीय भारत के हों। कांग्रेस यह मानती है कि उन्हीं हितों की सुरक्षा की जानी चाहिए जो इन करोड़ो मूक लोगों के हितों का साधन करते हैं।'' उन ऐतिहासिक दिनों से लेकर आज तक करोड़ों मूक लोगों तथा राष्ट्रीय हितों और दूसरी ओर कुछ वर्गीय हितों मं संघर्ष छिड़ा, कांगेस अपनी अधिकांश जनता के हितों के साथ दृढ़ प्रतिज्ञ रही।''

संगठन – कांग्रेस की सदस्यता दो प्रकार की है – प्रारम्भिक और सक्रिय। कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसकी आयु 18 वर्ष हो, कांग्रेस का सदस्य बन सकता है। सदस्य बनने के लिए दल के उद्देश्यों में लिखित विश्वास प्रकट करना पड़ता है। प्रारम्भिक और सक्रिय सदस्यों के चन्दे तथा अधिकारों में अन्तर है। संगठन की दृष्टि से ग्राम या मोहल्ला कांग्रेस समिति संगठन की आधारभूत इकाई है। ग्राम और मोहल्ला कांग्रेस समितियों के ऊपर तहसील समितियां होती हैं। इसके ऊपर जिला समितियां और प्रान्तीय समितियां होती हैं। संगठन की दृष्टि से सम्पूर्ण देश पच्चीस प्रदेशों में विभक्त है। प्रान्तीय कांग्रेस समितियों के ऊपर कांग्रेस का राष्ट्रीय या अखिल भारतीय संगठन होता है जो एक अध्यक्ष, एक कार्यकारिणी समिति, एक अखिल भारतीय कांग्रेस समिति और कांग्रेस के खुले वार्षिक अधिवेशन से मिलकर बनता है। कांग्रेन ने विधान में एक नये संशोधन द्वारा अध्यक्ष की अवधि तीन वर्ष कर दी है। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में अध्यक्ष के अतिरिक्त 20 अन्य सदस्य होते हैं। कार्यकारिणी समिति के 10 सदस्य अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं और 10 सदस्य कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। कार्यकारिणी समिति में ही कांग्रेस की सर्वोच्च शक्ति निहित है। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में तीन प्रकार के सदस्य होते हैं – निर्वाचित, पदेन और सम्बद्ध संस्थाओं के प्रतिनिधि। कांग्रेस के संसदीय कार्यों के नियन्त्रण और समन्वय के लिए कांग्रेस कार्यकारिणी समिति एक संसदीय बोर्ड की स्थापना करती है। जिसमें कांग्रेसाध्यक्ष और पांच अन्य सदस्य होते हैं।

कांग्रेस (आई) की नीतियों और कार्यक्रम (Programme and Policies of the Congress (I))– जनवरी 1980 के लोकसभाके चुनावों के समय इस दल ने जो चुनाव आविस–पत्र (Election Manifesto) जारी किया था और उसके पश्चात् इस दल ने जो नीति प्रस्ताव समय–समय पर पारित किये हैं उसके अनुसार इस दल के कार्यक्रम और नीतियों को हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन कर सकते हैं :–

1. धर्म–निरपेक्ष समाज (Secular Society) – इस दल ने यह वचन दिया था कि यह दल धर्म–निरपेक्ष की

स्थापना के लिए वचनबद्ध है और इस मन्तव्य के लिये यह दल ऐसी कार्यवाहियाँ करेगा जिससे साम्प्रदायिक एकता और धार्मिक सहनशीलता विकसित हो सके। इस दल ने अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा और राष्ट्रीय जीवन में उनके प्रभावशाली सहभागिता को यकीनी बनाने के लिए आवश्यक पग उठाने का भी वचन दिया था। इस दल इस मत का समर्थक है कि संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुसार अल्पसंख्यकों के द्वारा स्थापित की गई शैक्षणिक संस्थाओं को पूर्ण सुरक्षा और धार्मिक और सांस्कृतिक व्यवहार की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए। धर्म–निरपेक्षता को शक्तिशाली बनाने के लिए यह उन राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं के विरूद्ध आवश्यक कार्यवाही करने के पक्ष में है जो संस्थाएँ भारतीय शासन प्रणाली के मूल सिद्धान्तों को नष्ट करने के लिए साम्प्रदायिक वर्गों (Sectional) या जात–पात सम्बन्धी भावनाओं को उत्तेजित करती है।

2. अल्पसंख्यक (Minorities) – इस दल ने यह वचन दिया था कि साम्प्रदायिक हिंसा (Communal Violence) को समाप्त करने के लिए यह दल एक विशेष शक्ति (Force) स्थापित करेगा, जिसका उद्देश्य साम्प्रदायिक शान्ति स्थापित करने में सहायता करना होगा। इस शक्ति में अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के लोग भर्ती किए जायेंगे। इसके अतिरिक्त यह दल अल्पसंख्यक आयोग (Minority Commission) को संवैधानिक मान्यता देने के पक्ष में हैं। अल्पसंख्यकों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के प्रति भी यह दल विशेष ध्यान देने का समर्थक है। अपने चुनाव आविस–पत्र में इस दल ने अल्पसंख्यकों को विश्वास दिलाया था कि सुरक्षा सेवाओं और सरकार की अन्य सेवाओं में उन्हें उचित रोजगार के अवसर प्रदान किए जाएंगे। इस दल ने यह भी विश्वास दिलाया था कि अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (Aligarh Muslim University) के अल्पसंख्यक स्वरूप (Minority Character) को यकीनी बनाया जायेगा और यह दल अल्पसंख्यकों के निजी कानून (Personal Law) में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

3. प्रजातन्त्र को शक्तिशाली बनाना (Strengthening of Democracy) – इस दल में यह विश्वास प्रकट किया था कि कुछ विशेष हितों के द्वारा धन का अधिक प्रयोग और शारीरिक पक्ष से डराने–धमकाने (Physical Intimidation) की कार्यवाहियों को रोकने के लिए आवश्यक पग उठाने की तत्काल आवश्यकता है। इस दल के विचार में कार्यवाहियाँ विशेष करके पिछड़े क्षेत्रों में अत्यधिक घटती हैं और जब तक इन कार्यवाहियों को समाप्त नहीं किया जाता तब तक भारतीय लोकतन्त्र शक्तिशाली नहीं बन सकता। इस दल ने जनता दल की सरकार पर यह दोष लगाया था कि इस सरकार ने प्रजातन्त्र विरोधी ऐसी कार्यवाहियों को रोकने के लिए कोई यत्न नहीं किये हैं, अपितु इसके विपरीत चुनावों में विजय प्राप्त करने के लिए जनता दल की सरकार ने स्वयं उन कार्यवाहियों का सहारा लिया हैं। जनता सरकार ने दल परिवर्तन (Defection) को भी उत्साहित किया था और भी कुछ ऐसी कार्यवाहियाँ की थी, जिनके कारण भारतीय प्रजातन्त्र कमजोर है। इसलिए कांग्रेस (I) ने इस बात पर बल दिया था कि भारतीय प्रजातन्त्रीय प्रणाली में जो भी अभाव या पथभ्रष्टता (Aberration) प्रवेश कर गई है। उन सभी को दूर करने के लिए यह दल ठीक रूप से कार्यवाही करेगा।

4. प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation) – इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण पर दृढ़ विश्वास प्रकट किया था। इस दल का विचार है कि राजनीतिक और सामाजिक आर्थिक गतिविधियों में लोगों को विशाल स्तर पर शामिल करने के लिए प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की क्रिया को कार्यान्वित रूप देना अनिवार्य है। इस दल का यह मत है कि प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की क्रिया निम्न स्तर पर आरम्भ होना अनिवार्य है ताकि लोग सरकार के साथ सम्बन्धित स्थानीय स्तर के कार्यों

से क्रियाशील सहभागी (Active Participants) बन सके। यह दल दहेज प्रथा और अन्य सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने के लिए प्राथमिकता (Priority) देने के पक्ष में हैं।

5. आर्थिक कार्यक्रम (Economic Programme) – यह दल समाजवादी समाज (Socialist Society) स्थापित करने के लिए बचनबद्ध है। यह दल ऐसा अर्थ व्यवस्था स्थापित करना चाहता है जो शोषण से मुक्त हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही यह दल योजनाबन्दी का पुनर्निर्माण करने का समर्थक है। अर्थव्यवस्था को दृढ़ बनाने के लिए इस दल की दृष्टि से अधिक से अधिक वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास (Technological Development) की आवश्यकता है। मुद्रा के प्रसार (Inflation) को रोकने के लिए मांग और पूर्ति (Demand and Supply) में ठीक संतुलन स्थापित करने के लिए यह दल उचित वित्तीय नीतियों को ग्रहण करना चाहता है। इस दल को विश्वास है कि इन मन्तव्यों की प्राप्ति के लिए उत्पादन को विशाल स्तर पर बढ़ाना अति अनिवार्य है और यह तब ही सम्भव हो सकता है। यदि ऐसा आर्थिक वातावरण विकसित किया जाये जिसमें लोग औद्योगिक धन्धों में पैसा लगा सकें। इसके अतिरिक्त इस दल का यह विश्वास है कि जब तक आवश्यक कच्ची सामग्री उचित मात्रा में उत्पादकों को प्राप्त नहीं होती तब तक उत्पादन के निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस मन्तव्य की प्रान्ति के लिए इस दल ने परिवहन के साधनों की योग्यता में सुधार करने, बिजली के उत्पादन को बढ़ाने और स्मगलिंग, जखीराबाजी और अन्य आर्थिक अपराधों को कठोरता सहित निपटाने के लिए आवश्यक कार्यवाहियाँ करने का विश्वास दिया था। इसके अतिरिक्त इस दल का यह मत है कि देश की अर्थव्यवस्था को दृढ़ बनाने के लिए विदेशी मुद्रा के संयम सहित प्रयोग करना अति अनिवार्य है और विदेशी मुद्रा (Foreign Exchange) को केवल ऐसी वस्तुओं को विदेशों से मंगवाने के लिए व्यय किया जाना चाहिए, जो वस्तुएं देश के उत्पादन को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकती है। साधारण शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यह दल देश के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पादन की मात्रा और गति को अधिक से अधिक सीमा तक पहुंचाने का इच्छुक है।

6. राष्ट्रीय आमदनी नीति (National Income Policy) – आमदनी सम्बन्धी यह दल एक विशाल राष्ट्रीय नीति निश्चित करना चाहता है। इस दल के विचार के अनुसार ऐसी नीति का मुख्य उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों (Sectors) और पेशे के आयु प्रबन्धों (Earning Structure) में ऐसे परस्पर स्वीकृत स्तर (Norms) स्थापित करना होगा जो मुद्रा प्रसार के दबावों (Inflationary Pressures) से, जहां तक सम्भव हो सके, सुरक्षित रह सकें और उनमें एक परस्पर सन्तुलन कायम रह सके। इसका साधारण अर्थ यह है कि यह दल विभिन्न पेशों और क्षेत्रों सम्बन्धी आमदनी की एक ऐसी नीति निश्चित करना चाहता है जिसके साथ मुद्रा का प्रसार न हो और विभिन्न पेशों से होने वाली आमदनी में एक उचित सन्तुलन बना रहे।

7. रोजगार (Employment) – यह दल रोजगार के अवसरो को बढ़ाने के लिए औद्योगिक विकास के साधन को विशाल स्तर पर अपनाना चाहता है। इस दल का विचार है कि बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने के लिए ऐसी औद्योगिक योजनाओं को प्राथमिकता दी जाये जो रोजगार के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करती हो। अधिक से अधिक रोजगार को यकीनी बनाने के लिए यह दल ग्रामीण और नगर क्षेत्रों में कारीगरों को अधिक से अधिक सुविधाएँ देने का समर्थन करता है ताकि वह अपने लिए आप रोजगार पैदा कर सकें। इस दल का यह सुझाव है कि प्रत्येक परिवार का कम से कम एक व्यस्क सदस्य उतना वेतन कमाता हो जितना कि सामाजिक कीमतों के अनुसार उचित हो। इस मन्तव्य के लिए यह दल एक समय–सीमित कार्यक्रम (Time Bound Programme)लागू करना चाहता है। यह दल रोजगार के अवसरों को बढ़ाने के मन्तव्य से

वनों का विकास, दरियाओं और सिंचाई की गहरों में से रेत निकालने के कार्यों आदि को विशाल स्तरा पर ग्रहण करना चाहता है। शिक्षक और योग्य युवक पुरूषों और स्त्रियों की सहायता करके उन्हें अपना कारोबार चलाने के योग्य बनाना इस दल के कार्यक्रम में शामिल है।

8. काश्तकारी (Agriculture) – यह दल काश्तकारी का आधुनिकीरण (Modernisation) करने के लिए काश्तकारी की उपज को अत्यधिक बढ़ाने के पक्ष में है। यह दल इस विचार का समर्थक है कि प्रायः जनता दल और विशेष करके लोक दल के नेताओं ने बड़े–बड़े भूपतियों और छोटे कृषकों के हितों को परस्पर समरूप या एक समान दिखाने का यत्न किया है। परन्तु इस दल का यह विचार है कि कृषकों या उद्योग विरूद्ध काश्तकारी के नाम पर लोगों की भावनाओं को जाग्रत करना एक राजनीतिक चाल है। इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र यह दावा किया था कि कांग्रेस शासन के दौरान की 'लघु कृषक विकास संस्था' (Small Farmer's Development Agency) स्थापित की गई थी। अत्यधिक संख्या में छोटे कृषकों ने इस संस्था से अनेकों प्रकार की रियायतें और लाभ प्राप्त किए थे। 'लघु कृषक विकास संस्था' (Small Farmer's Development Agency) की गतिविधियों का सम्पूर्ण देश में विस्तार करना और इसके कार्यक्रमों का आधुनिकीकरण करना इस दल के कार्यक्रम में शामिल है।

इसके अतिरिक्त कृषकों को ब्याज की उचित दर पर कर कर्जे प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करना, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Banks) और अन्य वित्तीय संस्थाएं छोटे और मामूली कृषकों की सहायता के लिए स्थापित करना, कृषकों को कर्जे देने की विधि सरल बनाना, मुर्गीखाने, रेशम के उत्पादन और दूध की डेरियों के द्वारा छोटे कृषकों की आय में वृद्धि काश्तकारी के साथ सम्बन्धित उद्योगों (Agro-Industries) को विशाल स्तर पर स्थापित करना, कृषक काश्तकारी सेवा केन्द्र (Farmer's Agro-Service Centres) खोलने, ग्रामीण क्षेत्र में भण्डार गृहों की सुविधाएँ (Ware Housing Facilities) प्रदान करना, पांच एकड़ तक शुष्क भूमि पर मालिया समाप्त करना और प्रचलित मालिया प्रणाली को समाप्त करके किसी अन्य उचित और साधारण प्रणाली को लागू करना कांग्रेस (I) के कार्यक्रम में शामिल है। इसके अतिरिक्त इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह भी वचन दिया था कि छोटे और मामूली कृषकों को आर्थिक पक्ष से पिछड़ा वर्ग समझा जाएगा और उन्हें यह सभी सुविधाएं और लाभ प्राप्त होंगे जो आर्थिक पक्ष से अन्य पिछड़े वर्गों को दिए जाते हैं।

9. उद्योग (Industry) – यह दल छोटे ग्रामीण, स्तर और विशाल स्तर के उद्योग के सामूहिक विकास पर विश्वास रखता है। अन्य शब्दों में यह दल प्रत्येक स्तर के उद्योग को विकसित करने के लिए उत्साहित करना चाहता है। यह दल उद्योगों के द्वारा रोजगार के अधिक से अधिक अवसर उत्पन्न करना चाहता है, परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि यह दल उद्योगों में मशीनीकरण या आधुनिकीकरण (Mechanisation or Modernisation) करना नहीं चाहता। इसके विपरीत यह दल वैज्ञानिक और तकनीकी विकास की सहायता के साथ विशाल स्तर के उद्योग स्थापित करने के पक्ष में है और उसके साथ–साथ निम्न और मध्य स्तर के और घरेलू उद्योग के विकास को उत्साहित करने का इच्छुक है।

10. बहु–राष्ट्रीय (Multi Nationals) – 'बहु–राष्ट्रीय' शब्द उन उद्योगों या संस्थाओं के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जिनकी शाखाओं या जिनके क्षेत्र का विस्तार विभिन्न देशों में हुआ हो। कांग्रेस (I) ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह वचन दिया था कि उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में बहु–राष्ट्रीय व्यापारों की भूमिका या उनके प्रभावों का पूर्ण रूप से निरीक्षण किया जाएगा ताकि उनकी गतिविधियों को सीमित करने के लिए

आवश्यक सामग्री का अन्वेषण किया जा सके। अन्य शब्दों में यह दल बहु–राष्ट्रीय व्यापारों के विस्तार के पक्ष में नहीं है और देश की अर्थव्यवस्था और उनके हानिकारक या विनाशकारी प्रभावों को निष्फल बनाना चाहता है।

11. श्रम (Labour) – उद्योगों में श्रमिकों की सहभागिता को यकीनी बनाना इस दल के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है। इस दल का विचार है कि उत्पादन और औद्योगिक प्रबन्ध में श्रमिकों का सहभागी होना अति आवश्यक हैं। इस दउ ने यह विश्वास दिया था कि ऐसी सहभागिता का तुरन्त ही विस्तार किया जाएगा और सरकारी व्यापार इस सम्बन्धी प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान करेंगे। यह दल सामाजिक न्याय की स्थिरता के लिए श्रमिकों की भलाई को अत्यन्त आवश्यक समझता है। कांग्रेस (I) ने अपने चुनाव आविस–पत्रों में काश्तकारी के साथ सम्बद्ध श्रमिकों (Agriculture Labour) की सर्वोन्नमुखी स्थिति को सुधारने के लिए विशेष कार्यक्रम लागू करने का विश्वास दिया था। काश्तकारी के साथ सम्बद्ध श्रमिकों को घर बनाने के लिए जमीन मुफ्त देना, घर बनाने के लिए सहायता देना, उनके लिए कम से कम वेतन निश्चित करना, उनके बच्चों के लिए स्कूल शिक्षा का प्रबन्ध करना और उनको बेरोजगार होने से सुरक्षित रखना आदि तथ्य कांग्रेस (I) के काश्तकारी के श्रमिकों के साथ सम्बन्धित कार्यक्रम में शामिल थे।

12. कमजोर वर्ग (Weaker Sections) – इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में यह विश्वास दिया था कि कमजोर वर्गों के लिए एक विशेष कार्यक्रम लागू करेगा। पांच वर्षों के समय में सभी अनिवार्य गाँवों को पीने के शुद्ध पानी का प्रबन्ध करना, समस्त देश के ग्रामीण क्षेत्रों में गृह–निर्माण के कार्य की गति की तीव्र करना, कमजोर वर्गों के लोगों को मकान बनाने के लिए मुफ्त भूमि देना, शहरी क्षेत्रों में गन्दे उपनिवेशों की सफाई करना, सफाई कर्मचारियों के प्रति विशेष ध्यान देना, ग्रामीण क्षेत्रों में कर्जदारी समाप्त करना और वचनबद्ध श्रम (Bonded Labour) का अन्त करना कमजोर वर्गों की स्थिति को सुधाराने सम्बन्धी ग्रहण किए जाने वाले कार्यक्रम के विशेष लक्षण होंगे। 1975–1976 में संकटकालीन स्थिति के दौरान कांग्रेस दल की सरकार ने 20 सूत्रीय कार्यक्रम (20-Point Programme) चलाया था। कांग्रेस (I) ने 20 सूत्रीय कार्यक्रम को पुनः लागू करने के लिए अपने चुनाव आविस–पत्र में घोषणा की थी। इस दल ने इस बात पर भी बल दिया था कि भूमि सुधारों को लागू करने के लिए गम्भीर यत्न किए जायेंगे और जनता दल के शासन काल में जिस किसी व्यक्ति से भूमि छीन ली गई थी, वह भूमि उस व्यक्ति को वापिस दी जाएगी।

13. अन्तर्राष्ट्रीय नीति (International Policy) – इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में यह घोषित किया था कि इस दल के विचार में भारत का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में बड़ी महत्वपूर्ण, गतिशील और लाभदायक भूमिका अभिनीत करनी है। भारत की यह भूमिका विशेष रूप में विकसित और विकासशील देशों में पाये जाने वाले अन्तरों को सीमित करने के प्रति और विश्व शान्ति की स्थापना के प्रति होगी। यह दल प्रभुताशाली समानता, परस्पर आदर और देशों के आन्तरिक कार्यों में हस्तक्षेप न करने के आधार पर सभी देशों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने और दृढ़ बनाने पर विश्वास रखता है। अपने चुनाव आविस पत्र में इस दल ने यह घोषित किया था कि :–

(I) कांग्रेस बाह्य खतरों के विरूद्ध भारत की क्षेत्रीय और प्रभुसत्ता की रक्षा करेगा।

(II) भारत के आकार, प्राकृतिक स्त्रोतों, मानवी योग्यता, उसकी भौगोलिक स्थिति और उसकी दीर्घ जमीनी, वायु और समुद्री सीमाओं को प्रमुख मानकर यह दल भारत की रक्षा योग्यता (Defence Capability) को शक्तिशाली बनाने का यत्न करेगा।

(III) अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत के गौरव, सम्मान और राष्ट्रीय हितों को कायम रखेगा।

(IV) शान्तमयी आधारों पर भारत के विकास के लिए परमाणु शिल्प–विज्ञान (Nuclear Technology) के प्रयोग से भारत के प्रभावशाली अधिकारों की रक्षा करेगा।

(V) जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रतिभासित की गई शान्तमयी सह–अस्तित्व की नीति (Policy of paceful Co-existence) और गुटबन्दी से रहित नीति (Policy of Non-Alignment) का दृढ़ता सहित पालन करेगा।

(VI) दक्षिणी–एशिया (South Asia), दक्षिणी पूर्वी एशिया (South East Asia), पश्चिमी एशिया (West Asia), अफ्रीका (Africa) और लेटिन अमेरिका (Latin America) के देशों में निकटवर्ती सम्बन्ध स्थापित करने के लिए यत्न करेगा।

(VII) यह दल उन देशों के साथ द्वि–पक्षीय (Bi-lateral) और बहु–पक्षीय (Multi-lateral) समझौते करेगा और उनकी परस्पर ऐसे समझौते करने के लिए उत्साहित करेगा। ऐसे समझौते शांति स्थापित करने के लिए परस्पर सहयोग के लिए और इस क्षेत्र को बाह्य हस्तक्षेप से सुरक्षित रखने के लिए इसका शान्तमयी क्षेत्र बनाने के लिए किए जाएंगे।

निष्कर्ष (Conclusion) – कांग्रेस (I) ने 1980 के लोकसभा के चुनावों में 9 राज्यों की विधानसभाओं के चुनावों में शानदार सफलता प्राप्त की थी। साधारण लोगों को यह विश्वास था कि यह दल अपनी घोषित नीतियों अनुसार साधारण लोगों के हितों के कार्य करने के लिए गम्भीर प्रयास करेगा ताकि यह दल अपने प्रति लोगों के विश्वास को स्थिर रख सके। परन्तु जब लोग प्रायः यह अनुभव करने लग पड़े थे कि दल ने अपनी नीतियों को लागू करने के लिए कोई विशेष सफल प्रयास नहीं किए हैं। इसी कारण मई, 1982 में पश्चिमी बंगाल, हरियाणा, केरल और हिमाचल प्रदेश की विधान सभाओं के चुनावों में इस दल को वह शानदार सफलता प्राप्त न हुई जो केवल 2 वर्ष पूर्व लोकसभा और कुछ अन्य राज्यों की विधान सभाओं के चुनावों में इस दल को विजय प्राप्त हुई थी। जनवरी, 1983 में इस दल की आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और मणिपुर की विधानसभाओं के चुनावों में भी निराशा का मुख देखना पड़ा था। इस दल की लोकप्रियता दिन–प्रतिदिन कम होती जा रही है। इस दल में आंतरिक फूट अत्यधिक है और इसी कारण कई राज्यों में इस दल की सरकारों की स्थिरता को निरन्तर खतरा बना रहता है। इस दल सम्बन्धी यह विचार भी प्रायः प्रचलित है कि यह दल श्रीमती इन्दिरा गाँधी के व्यक्तित्व के इर्द गिर्द की घूमता है। लोगों का विश्वास पुनः जीतने के लिए इस दल को गम्भीर प्रयास करने पड़ेंगे क्योंकि लोगों का भारी बहुमत इस दल की कार्यप्रणाली से सन्तुष्ट नहीं है।

बीस–सूत्री कार्यक्रम – 1975 में घोषित किया गया। 1982 में इसे नवीनता प्रदान की गई। इसमें भूमि सुधार, कृषि उपज, ग्रामीण विकास, खेती योग्य भूमि की सीमा निर्धारण, कृषि श्रमिकों का वेतन, अनुसूचित जाति एवं जनजाति नियोजन स्वस्थ्य, प्रारम्भिक शिक्षा, उचित मूल्य दुकानें आदि का प्रावधान किया जाएगा।

समय परिवतर्नन के साथ–साथ इसके कार्यक्रम तथा विचारधारा भी बदलती रहती है। आजकल इस दल के प्रमुख कार्य परिवार कल्याण, पेयजल, ग्रामीण आवास, बिजली आदि हैं।

**लोकसभा के चुनाव (फरवरी 1998) और कांग्रेस का चुनाव घोषणा–पत्र**

लोकसभा के फरवरी 1998 में सम्पन्न हुए मध्यावधि चुनावों के अवसर पर जारी घोषणापत्र में कांग्रेस ने बावरी मस्जिद

को ध्वस्त होने से नहीं बचा पाने के कारण बिना शर्त माफी मांगी और इसके लिए अपनी तत्कालीन सरकार के पूर्व प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंहराव को पूरी तरह जिम्मेदार ठहराया। घोषणा पत्र में संयुक्त मोर्चे को भानुमति का कुनबा बताया। जनता दल को 'एमीवा' कीडे की तरह घोषित किया गया। इसे निराश और घमण्डी लोगों का जमावड़ा बताया गया। कांग्रेस ने जैन आयोग की रिपोर्ट के मुद्दे पर संयुक्त मोर्चा सरकार से समर्थन वापसी को उचित ठहराया और कहा कि किसी भी परिस्थिति में अपने नेता राजीव गांधी की हत्या के प्रश्न पर समझौता नहीं कर सकती।

कांग्रेस ने चुनाव घोषणा पत्र में अल्पसंख्यकों से अनेक वादे किये हैं। कहा है कि अल्पसंख्यकों और मानवाधिकारों के लिए एक नया मन्त्रालय गठित किया जायेगा। संविधान में संशोधन करके अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के लिए एक आयोग स्थापित करेगी। उर्दू का उसका उचित स्थान दिलाया जायेगा। पार्टी भारतीयों के लिए समान निजी कानून बनाने के विचार को नहीं मानती। कांग्रेस अल्पसंख्यकों के सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े लोगों को आरक्षण की सुविधा देगी। उन्हें अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों को दी जाने वाली विशेष सुविधाओं का भी लाभ देगी।

कांग्रेस ने चुनाव घोषणा पत्र में कहा है कि देश के आदिवासी क्षेत्रों में विशेष न्यायालयों को स्थापित किया जाएगा। बैंकों द्वारा अनुसूचित जाति और जनजाति के किसानों के लिए शुरू की गई सौ करोड़ रूपये की विशेष ऋण व्यवस्था की राशि को दुगुना कर दिया जाएगा। उद्योगों में कर्मचारियों की हिस्सेदारी को प्रोत्साहित किया जाएगा। पूर्व सैनिकों के पुनर्वास के लिए नए कार्यक्रम शुरू किए जाएंगे। महिलाओं और लड़कियों के खिलाफ भेदभाव को समाप्त करने के लिए पार्टी एक राजनीतिक अभियान शुरू करेगी। कांग्रेस सभी स्कूलों में एन.सी.सी. को अनिवार्य कर देगी। कांग्रेस यह सुनिश्चित करेगी कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली का लाभ सिर्फ गरीब और जरूरतमन्द लोगों को मिले। वर्तमान परिवार नियोजन की खामियों को एक सुनिश्चित तरीके से दूर करने का प्रयास किया जाएगा। चुनाव घोषणा पत्र में कांग्रेस ने अपने आर्थिक एजेन्डा की भी रूपरेखा निर्धारित की है। कहा गया है कि कृषि और ग्रामीण बुनियादी ढांचे में विशेषकर पिछड़े इलाकों में वास्तविक पूंजी निवेश बढ़ाना होगा। ऋण प्रणालियों को फिर सशक्त बनाना होगा। बिजली, सड़क, बन्दरगाह, कोयला, तेल और गैस, खनन और दूरसंचार जैसे क्षेत्रों में घरेलू और विदेशी सार्वजनिक और निजी पूंजी निवेश बढ़ाना होगा। पूंजी बाजार में फिर से उत्साह का संचार करना होगा। रोजगार परक आर्थिक गतिविधियों को नीति का विकास मानकर उन पर विशेष ध्यान देना होगा। इनमें निर्यात, कृषि, पशुधन और पशुपालन, सूचना टैक्नोलॉजी, आवा और निर्माण, वनीकरण, छोटे और ग्रामीण उद्योग, कपड़ा तथा पर्यटन आदि उद्योग शामिल हैं।

कांग्रेस ने चुनाव घोषणा पत्र में कहा है कि वह विदेश नीति को देश की आर्थिक प्राथमिकताओं और चिंताओं से जोड़ेगी। कांग्रेस देश में पाकिस्तान के सहयोग से चल रही आतंकवादी और घुसपैठ की गतिविधियों का डटकर मुकाबला करेगी। हमारी परमाणु नीति शान्तिपूर्ण और विकासात्मक बनी रहेगी, लेकिन जरूरत पड़ने पर हम अपने अन्य विकल्पों को भी खुला रखेंगे। कांग्रेस अमरीका के सम्बन्धों को ओर मजबूत करेगी। यूरोपीय संघ के साथ समझौतो के सिलसिले को आगे बढ़ाया जायेगा। जापान के साथ और निकट के आर्थिक तथा निवेश सम्बन्ध स्थापित करने का विशेष अभियान चलाया जाएगा। रूस के साथ ऋण समस्या का मान्य हल खोंजने के प्रयास किये जाएंगें। कांग्रेस पूर्ण निरस्त्रीकरण के प्रयास जारी रखेगी। कांग्रेस ने धर्मनिरपेक्षता की अपनी नीति को फिर दुहराया है। घोषणा–पत्र में कहा गया है कि धर्मनिरपेक्ष होने का दावा करने वाले वामपंथी मोर्चे ने सन् 1989 के चुनावों में भाजपा को सम्मान दिया। वह राष्ट्रीय मोर्चा सरकार को समर्थन देने में भी भाजपा के साथ रहा। कांग्रेस ने ही भाजपा से न कभी समझौता किया और न करेगी। पार्टी ने देश में आर्थिक स्वराज की स्थापना को अपना लक्ष्य बताया है।

''पूर्व भारत से नाता है, सरकार चलाना आता है'– के उद्घोष के साथ कांग्रेस ने विश्वास व्यक्त किया कि स्थायित्वपूर्ण और धर्मनिरपेक्ष सरकार के लिए एक बार फिर उसे भारत की जनता का समर्थन मिलेगा।

12वीं लोकसभा में कांग्रेस को 141 सीटें प्राप्त हुई। अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, पंजाब, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तर–प्रदेश जैसे राज्यों में कांग्रेस को एक भी सीट नहीं मिली।

13वीं लोकसभा के चुनाव (सितम्बर–अक्तूबर 1999 और कांग्रेस) – 1999 में 13वीं लोकसभा का चुनाव कांग्रेस ने श्रीमती सोनिया गांधी के नेतृत्व में लड़ा। पिछले वर्ष सोनिया के अध्यक्ष पद सम्भालने से पार्टी को नया वंशगत उत्तराधिकारी मिल गया। सोनिया ने इस चुनाव में अल्पसंख्यकों और दलितों का समर्थन फिर से पाने के साथ–साथ अभिजात वर्ग की सद्भावना का पहले जैसा लाभ उठाने का भरसक कोशिश की। मध्यम वर्ग का दिल जीतने के लिए पार्टी के चुनाव घोषणा पत्र में रोजगार पर जोर देते हुए कहा गया कि ''एक करोड़ नए रोजगार के अवसर बनाए जाएंगे।'' अल्पसंख्यकों के लिए विशेष पैकेज की चर्चा करते हुए प्राथमिक शिक्षा पर जोर दिया गया। राष्ट्रीय जनता दल, अन्ना द्रमुक तथा मुस्लिम लीग जैसे दलों से कांग्रेस ने चुनावी तालमेल भी किया। इस चुनाव में कांग्रेस ने 453 सीटों के लिए प्रत्याशी खड़े किए और उसके मात्र 113 प्रत्याशी (28.42% seat) ही लोकसभा में पहुंचे। यदि कर्नाटक में कांग्रेस के भाग्य का छींका न टूटा होता तो उसका आंकड़ा दो अंकों पर ही सिमट जाता। उत्तर प्रदेश में 1998 के शून्य स्कोर के मुकाबले एक बार उसे 10 सीटें प्राप्त हुई।

**चुनाव 1999 : कांग्रेस घोषणा पत्र के प्रमुख बिन्दु**

- मुद्रास्फीति के नियन्त्रण के लिए केबिनेट समिति का गठन।
- सन् 2003 तक आयात लाइसेन्स का खात्मा करना।
- छोटे किसानों को मिलने वाले कर्ज की मात्रा दोगुनी करना।
- दूरसंचार में विदेशी निवेश की सीमा पर पुनर्विचार करना।
- प्रतिरक्षा सुधारों के लिए समिति का गठन करना।
- राष्ट्रीय वरिष्ठ नागरिक कोश की स्थापना।
- राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा परिषद् का गठन करना।
- श्रम कानूनों का पुनर्निरीक्षण।
- नई कपड़ा नीति।

## जनता पार्टी (Janata Party)

मार्च, 1977 में हुए लोकसभा के चुनावों में जनता पार्टी नामक एक नये राजनीतिक दल ने भाग लिया था। इस दल का निर्माण जनवरी, 1977 में चार राजनीतिक दलों – कांग्रेस (संगठन), भारतीय लोकदल, जनसंघ तथा समाजवादी दल ने मिलकर किया था। जनता दल में इन चार विरोधी दलों के अतिरिक्त कई बागी कांग्रेसी भी इस दल में सम्मिलित हुए थे। ये राजनीतिक दल श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा जून, 1975 में आन्तरिक आपातकालीन स्थिति लागू करने के प्रतिक्रम के कारण अस्तित्व में आया था। इस दल ने मार्च, 1977 में लोकसभा के चुनावों में शानदार सफलता

प्राप्त की थी। श्री मोरारजी देसाई की अध्यक्षता में इस दल ने सरकार का निर्माण किया। स्वतन्त्रता उपरान्त यह प्रथम समय था कि एक गैर–राजनीतिक दल ने केन्द्र में शासन की बागड़ोर सम्भाली थी। वह वर्णनीति है कि बाबू जगजीवन राम ने कांग्रेस से त्यागपत्र देकर 'कांग्रेस फार डैमोक्रेसी' (Congress for Democracy) नामक एक नये राजनीतिक दल को जनवरी 1977 में जन्म दिया था। 1 मार्च 1977 के लोकसभा के चुनावों में इस दल ने जनता पार्टी के सहयोग से चुनाव लड़े थे। तदोपरान्त मई, 1977 में यह दल भी जनता पाटी में सम्मिलित हो गया था।

जनता पार्टी की नीतियां और कार्यक्रम (Policies and Programmes of the Janata Party) – जनवरी 1980 में लोकसभा के चुनावों के समय जनता दल ने अपना चुनाव–आविस–पत्र (Election Manifesto) जारी किया था। इस चुनाव आविस–पत्र में जनता दल ने अपने प्रमुख सिद्धान्तों और नीतियों का वर्णन किया था। जिन्हें हम संक्षेप रूप में निम्नलिखित शीर्षकों के अधीन वर्णन कर सकते हैंः–

1. प्रारम्भिक सिद्धान्त (Basic Principles) – इस दल के प्रारम्भिक सिद्धान्त इस प्रकार है–

   (i) सत्तावाद वंश–शासन और व्यक्तिगत महानता (Personality Cult) की विरोधता और प्रत्येक स्तर और लोकतन्त्र की स्थापना।

   (ii) प्रभावशाली और स्थायी सरकार जो कानून के शासन (Rule of Law) पर आधारित होगी और जिसमें लोगों को शान्तमय विधि के द्वारा अपने विरोधी विचार प्रकट करने या आन्दोलन करने का अधिकार प्राप्त होगा।

   (iii) धर्म–निरपेक्ष समाज की स्थापना जिसमें सभी धर्मों और नस्लों के लोगों से उचित स्थान प्राप्त होगा।

   (iv) अर्थ–व्यवस्था और प्रशासन में विकेन्द्रीकरण करना ताकि स्थानीय स्वशासन के निम्न स्तर की संस्थाओं को अधिक से अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं।

   (v) समाजवादी समाज की स्थापना करना जिसमें जन तक क्षेत्र की प्रमुख भूमिका होगी और यह क्षेत्र अति गरीब लोगों के हितों के लिए कार्य करेगा।

   (vi) आत्म–निर्भरता के द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा को यकीनी बनाना।

   (vii) वास्तविक दलबन्दी रहित विदेशी नीति (Policy of Genuine Non-Alignment) का पालन करना।

2. राजनीतिक कार्य (Political Tasks) – इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में निम्नलिखित राजनीतिक कार्यों की पूर्ति करने पर बल दिया था –

   (i) इस दल का विश्वास है कि हमारे देश के संविधान में कुछ विशेष परिस्थितियों को निपटाने के लिए अनिवार्य व्यवस्थाएँ विद्यमान नहीं है। इसलिए यह दल राष्ट्रपति और राज्यों के राज्यपालों की शक्तियों सम्बन्धी, राष्ट्रपति राज्य लागू करने सम्बन्धी आदि संवैधानिक व्यवस्थाओं का पूर्ण निरीक्षण करना चाहता है और नये हालातों के अनुसार इनमें आवश्यक परिवर्तन करने का इच्छुक हैं। इसके अतिरिक्त यह दल निगरान सरकार (Caretaker Government) की शक्तियों की सीमा और उसकी स्थिति को स्पष्ट रूप से संवैधानिक व्यवस्थाओं के द्वारा वर्णन करना चाहता है।

   (ii) यह दल राजनीतिक अधिकारों की शुद्धता का आदर करता है और इस मत का समर्थक है कि मौलिक अधिकारों की अखण्डता प्रत्येक अवस्था में कायम रहनी चाहिए। इस दल का यह मत है कि मौलिक

अधिकारों और निर्देशक सिद्धान्तों में कोई अन्तर विरोधता नहीं है। यह दल मौलिक अधिकारों को सीमित किये बगैर निर्देशक सिद्धान्तों को लागू करना चाहता है।

जनता दल चुनाव–प्रणाली में अग्रलिखित सुधार लागू करना चाहता हैः–

(i) लोकसभा पर राज्य विधानसभाओं के चुनावों के लिए राज्य के द्वारा वित्तीय सहायता दी जाये।

(ii) प्रमाणित राजनीतिक दलों की उचित गतिविधियों के लिए भी राज्य के द्वारा वित्तीय सहायता देने का प्रबन्ध किया जाये।

(iii) राजनीतिक दलों के हिसाब–किताब की प्रत्यक्ष रूप से चुनाव–आयोग (Election Commission) के द्वारा स्थापित की संस्थाओं के द्वारा जनतक जांच पड़ताल (Public Audit) करने का प्रयत्न किया जाये।

(vi) चुनाव के दौरान किसी विशेष पद के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रशासनिक ढांचे के दुरूपयोग को रोकने का प्रबन्ध किया जायें।

(v) सभी मतदाताओं के लिए जान–पहचान कार्ड (Identity Card) जारी किये जायें।

(vi) प्रत्येक मतदाता को निड़रता सहित अपने मत का प्रयोग करने का पूर्ण अवसर दिया जाये।

(vii) मत का अधिकार देने की आयु 21 वर्ष से कम करके 18 वर्ष की जाए।

(viii) यह दल इस पक्ष में है कि दल परिवर्तन कीर मन्दवादी को रोकने के लिए अनिवार्य कानून का निर्माण किया जाना चाहिए, यहाँ यह वर्णन योग्य है कि जनता दल की सरकार ने अपने शासन काल के समय दल परिवर्तन को रोकने के लिए एक संवैधानिक संशोधन करने का यत्न किया था, परन्तु जनता दल के कुछ अपने ही विधायकों के दबाव के अधीन सरकार को यह संवैधानिक संशोधन वापिस लेना पड़ा।

3. आर्थिक कार्य (Economic Tasks) – जनता दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में निम्नलिखित आर्थिक कार्यों को कार्यान्वित रूप देने का विश्वास दिया था :–

   (i) आर्थिक योजनाबन्दी में काश्तकारी और ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी जायेगी।

   (ii) जिन कीमतों पर कृषक उत्पादन करने के लिए सामग्री क्रय करता है, उन कीमतों और जिन कीमतों पर वह अपना उत्पादन विक्रय करता है, में उचित सन्तुलन स्थापित किया जायेगा। अन्य शब्दों में कृषक को उसके उत्पादन का उचित मूल्य प्राप्त करने के लिए व्यवस्थाएँ की जाएगी।

   (iii) ग्रामीण–श्रमिकों (Rural-Workers) को संघ (Unions) बनाने के लिए सहायता दी जाएगी।

   (iv) जनता सरकार के द्वारा त्यागपत्र देने के समय वस्तुओं की कीमतें जिस स्तर पर अस्तित्व में भी उस स्तर की स्थिरता सहित पुनः स्थापित करने का यत्न किया जायेगा। अन्य शब्दों में बढ़ रही कीमतों को रोका जायेगा और कीमतों को कम करने के लिए यत्न किये जायेंगे।

   (v) अति गरीबों की भलाई के लिए जनता दल की सरकार ने एक–कार्यक्रम लागू किया था जिसको ऐनटोडिया (Antyodaya) के नाम से जाना जाता है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य अति गरीब लोगों को अपने पैरों पर खड़ा करने योग्य बनाना है। जनता दल ने यह दावा किया था कि अपने शासन काल में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 12 लाख गरीब परिवारों को सहायता दी गई थी। इस दल ने अपने

चुनाव–आविस–पत्र में यह विश्वास दिया था कि आने वाले पांच वर्षों में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 125 लाख अति गरीब परिवारों को सहायता दी जाएगी।

(vi) 10 वर्षों के समय के भीतर सभी क्षेत्रों में ग्रामीण रोजगार देने सम्बन्धी योजना (Rural Employment Gurantee Scheme) को लागू किया जायेगा और इस योजना का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक परिवार के कम से कम एक सदस्य को रोजगार देना अनिवार्य होगा।

(vii) उन बेरोजगार ग्रेजुएटों को भत्ता दिया जायेगा जो रोजगार प्राप्त होने तक सामाजिक सेवाओं की योजनाओं में कार्य करेंगे।

(viii) पांच वर्षों के समय के भीतर भूमिहीन श्रमिकों और कारीगरों के संस्थात्मक कर्जे (Institutional Credit) को तीन गुणा कर दिया जायेगा।

(ix) योजनाबन्दी के खर्चे का 45 प्रतिशत हिस्सा 'सामूहिक ग्रामीण विकास' (Integerated Rural Development) के लिए लगाया जाएगा और भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनों को 9वीं अनुसूची में अंकित किया जायेगा ताकि न्यायपालिका इन कानूनों को किसी आधार पर असंवैधानिक घोषिक न कर सके। यहाँ यह वर्णन योग्य है कि संसद संवैधानिक संशोधन के द्वारा जिस कानून को भी 9वीं अनुसूची (9th Schedule) में अंकित कर देती है। वह कानून न्यायालयों के न्यायिक पुनर्निरीक्षण के अधिकार (Power of Judicial Review) से बाहर होता है।

(x) पांच वर्षों के समय के भीतर सभी फालतू भूमि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के भूमिहीन सदस्यों में विभक्त की दी जाएगी।

(xi) जो भी गुजारे या पट्टेदार निजी रूप में काश्त करते हैं, उनको पांच वर्षों के समय के भीतर उस भूमि के स्वामित्व के अधिकार दे दिये जायेंगे।

(xii) कृषकों को उनके उत्पादनों का पारिश्रमिक मूल्य दिया जायेगा।

(xiii) आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण कम किया जायेगा और एकाधिकारों (Monopolies) और अन–उचित व्यापारिक गतिविधियों को समाप्त किया जायेगा।

(xiv) उचित करों और नियन्त्रण द्वारा विलासमयी या अय्याशी की सामग्री के उपभोग को सीमित किया जायेगा।

(xv) जनमत क्षेत्र (Public Sector) और सहकारिता (Co-operatives) की प्रमुख भूमिका को यकीनी बनाया जायेगा। अन्य शब्दों में यह दल जनतक क्षेत्र और सहकारिता के उद्देश्यों को अधिक उत्साहित करने के पक्ष में है।

(xvi) सभी उद्योगों और काश्तकारी श्रमिकों के कम से कम वेतन को यकीनी बनाया जायेगा।

(xvii) बोनस कानून (Bonus Act) में सुधार करने के लिए इसकी कमियों को दूर किया जायेगा।

(xviii) आवश्यक अन्वेषणों और प्रयोगों के द्वारा शान्तमयी मन्तव्यों के लिए प्रमाण शक्ति का विकास किया जायेगा।

4. प्रैस की स्वतन्त्रता (Freedom of Press) – यह दल प्रैस की स्वतन्त्रता को लोकतन्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार मानता है। यह दल संविधान में संशोधन करके प्रैस की स्वतन्त्रता सम्बन्धी स्पष्ट संवैधानिक व्यवस्था करना चाहता था। यहाँ यह वर्णन योग्य है कि वर्तमान समय में हमारे संविधान में प्रैस की स्वतन्त्रता सम्बन्धी कोई विशेष वर्णन नहीं किया गया है, अपितु अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत वर्णित भाषणों और विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता (Freedom of Speech and Expression) में ही प्रैस की स्वतन्त्रता को सम्मिलित समझा जाता है। यह दल प्रसारण और दूरदर्शन की स्वाधीनता (Autonomy) प्रदान करने का इच्छुक है। इस मन्तव्य के लिए ही इस दल की सरकार ने 'प्रसार भारतीय विधेयक' (Parsar Bharti Bill) लोकसभा में प्रस्तुत किया था, परन्तु लोकसभा के भंग हो जाने के कारण वह विधेयक कानून का रूप धारण न कर सका। यह दल दूरदर्शन और प्रसारण के लिए एक स्वाधीन निगम (Autonomous Corporation) स्थापित करना चाहता है।

5. अल्पसंख्यक (Minorities) – जनता दल का यह विश्वास है कि अल्पसंख्यकों की समस्याओं के प्रति विशेष ध्यान देना अनिवार्य है ताकि उनको यह विश्वास हो सके कि समूचे राष्ट्र में उनको उचित स्थान प्राप्त होगा। इस दल की सरकार ने अपने शासनकाल में अल्पसंख्यकों की समस्याओं को निपटाने के लिए अल्पसंख्यक आयोग (Minorities Commisssion) स्थापित किया था। यह दल इस आयोग को संवैधानिक मान्यता और कानूनी शक्तियाँ देना चाहता था परन्तु लोकसभा भंग हो जाने के कारण यह दल ऐसा न कर सका। इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में अल्पसंख्यक आयोग को संवैधानिक मान्यता देने सम्बन्धी अपने विचार को पुनः व्यक्त किया था। इस दल ने यह भी विश्वास दिया था कि यह संवैधानिक मान्यता देने सम्बन्धी अपने विचार को पुनः व्यक्त किया था। इस दल ने यह भी विश्वास दिया था कि यह दल प्रत्येक सम्भव यत्न करेगा कि सभी अल्पसंख्यकों के विकास के लाभों को समरूप में मान सकें और किसी भी अल्पसंख्यक के विरूद्ध किसी प्रकार का भेदभाव न हो। इस दल ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अल्पसंख्यक स्वरूप (Minority Character of Aligarh Muslim University) को पुनः स्थापित करने का विश्वास दिया था।

6. अनुसूचित जातियाँ, कबीले और पिछड़ी श्रेणियाँ (Schedule Castes, Tribes and Backward Classes) – जनता दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में आर्थिक और सामाजिक पक्ष से पिछड़ी श्रेणियों की समस्याओं का समाधान करने का विश्वास दिया था। इस दल की सरकार ने अपने शासनकाल में श्री बी०पी० मण्डल के नेतृत्व के अन्तर्गत पिछड़ी श्रेणियों सम्बन्धी आयोग (Backward Classes Commission) स्थापित किया था। इस दल ने अनुसूचित जातियों और अनुसचित कबीलों को भी विश्वास दिया था कि उनकी सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के प्रति विशेष ध्यान दिया जायेगा। इस दल का विचार है कि जब तक इन जातियों के विरूद्ध सामाजिक भेदभाव कायम रहता है तब तक इन जातियों को संविधान के द्वारा दी गई विशेष सुविधाएँ कायम रहेंगी। अन्य शब्दों में अनुसूचित जातियों और कबीलों के लिए संसद और राज्य विधानमण्डलों में स्थान सुरक्षित रखे जायेंगे और इन जातियों के विकास के लिए आवश्यक अन्य सुविधाओं का विशेष प्रबन्ध किया जायेगा। इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह भी कहा था कि 'भूमि की सीमा सम्बन्धी कानून' (Land Celling Laws) को लागू करने के फलस्वरूप जो भूमि फालतू होगी उस भूमि को भूमिहीन व्यक्तियों में बांटते समय अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के लोगों को प्राथमिकता दी जाएगी। कबायली क्षेत्रों में रहते लोगों को अपने सम्याचार के अनुसार विकसित होने, शोषण और कर्जदारी से बचने और विकास के मन्तव्य के लिए अपनी संस्थाएँ करने के योग्य बनाने के लिए विशेष कार्यवाही की जाएगी।

7. विदेश नीति (Foreign Policy) – इस दल का यह दृढ़ मत है कि राष्ट्रीय सुरक्षा (National Security) मुख्य

रूप से चार आधारों पर नियमित करती है। राष्ट्रीय एकता (National Integration), आर्थिक विकास (Economic Development), कूटनीति (Diplomacy) और रक्षा (Defence) ये चार आधार हैं जो राष्ट्रीय सुरक्षा के चार स्तम्भों (Pillars) के रूप में कार्य करते हैं। जहाँ तक जनता दल की विदेश नीति का सम्बन्ध है यह दल ऐसी स्वतन्त्र विदेशी नीति ग्रहण करने का इच्छुक है जो विश्व शान्ति के विकास के लिए सहायक सिद्ध हो। इस कारण यह दल सैनिक दलबन्दियों की राजनीति (Politics of Military Bloc) के विरूद्ध है और एक वास्तविक दलबन्दी से रहित (Genuine Non-Alignment) विदेशी नीति के लिए वचनबद्ध है। अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को शान्तिपूर्वक ढंग से हल करने के लिए, विश्व–व्यापार और सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए और प्रत्येक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग विकसित करने के लिए यह दल संयुक्त राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने का इच्छुक है। यह दल नस्लवाद और उपनिवेशवाद के समस्त रूपों का विरोधी और मानव अधिकारों का समर्थक है। यह दल सभी राष्ट्रों के साथ सामान्य विकासशील देशों के साथ विशेष करके मित्रतापूर्वक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। दक्षिणी एशिया (South Asia) के क्षेत्र के सभी देशों में क्षेत्रीय सहयोग को विकसित करने के लिए उत्साह देना, दक्षिणी पूर्वी और पश्चिमी एशिया (South East and West Asia) में इस प्रकार की कार्यवाहियों का समर्थन करना, हिन्द महासागर को शाक्ति का क्षेत्र बनाने के लिए कार्य करना और दक्षिणी अफ्रीका में चल रहे स्वतन्त्रता संग्राम को पूर्ण सहयोग देना इस दल के कार्यक्रम में सम्मिलित है। यह दल भारत के पड़ोसी देशों के साथ और 'तीसरे विश्व' (Third World) के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का विशेष रूप में इच्छुक है। यहाँ यह वर्णन योग्य है कि तीसरे संसार में पिछड़े और विकासशील देशों के अतिरिक्त वे देश भी सम्मिलित हैं, जो उपनिवेशवाद (Colonialism) का शिकार रहे हैं और उपनिवेशवाद से मुक्ति प्राप्त करनके पश्चात् सर्वपक्षीय विकास के लिए यत्न कर रहे हैं।

**निष्कर्ष** (Conclusion) – जनता पार्टी में सम्मिलित भिन्न–भिन्न राजनीतिक दल अपने पृथक राजनीतिक अस्तित्व को पूर्णतया न कर सके। इसका निष्कर्ष यह निकलना कि इस दल में राजनीतिक एकता और राजनीतिक एकरूपता स्थापित न हो सकी। दल के नेताओं की परस्पर राजनीतिक विरोधता दिन–प्रति–दिन बढती गई। अन्त में इस दल के अनेकों विधायकों ने दल की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। इसी कारण जुलाई, 1979 में प्रधानमंत्री श्री देसाई को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा और इस प्रकार गैर कांग्रेसी राजनीतिक दल का शासन समाप्त हो गया। दल के नेताओं की आन्तरिक फूट के कारण इस दल के नेता इससे पृथक होते गये और उन्होंने अपने अलग राजनीतिक दल स्थापित कर लिये। वर्तमान समय में भारतीय राजनीतिक में इस दल को कोई विशेष महत्व प्राप्त नहीं है। केवल कर्नाटक राज्य में ही इस दल ने कुछ अन्य प्रान्तीय दलों की सहायता से सरकार का निर्माण किया है। देश के पर्याप्त बड़े भाग में इस दल का कोई विशेष राजनीतिक प्रभाव नहीं है, जिसके कारण यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यह दल शायद ही कभी 1977 जैसी अपनी शानदार उपलब्धि को पुनः दोहरा सके।

## भारतीय लोक दल (Bhartiya Lok Dal)

भारतीय लोकदल सितम्बर, 1979 में अस्तित्व में आया था। इस दल का निर्माण करने में उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध किसान नेता का विशेष हाथ था। चौधरी चरण सिंह उस समय केन्द्र में निगरान सरकार (Caretaker Government) के प्रधानमंत्री थे। लोकदल का निर्माण करने से प्रसिद्ध नेता श्री राजनारायण ने भी चौधरी चरणसिंह का साथ दिया था परन्तु शीघ्र ही श्री नारायण लोकदल से अलग हो गए।

**लोकदल की नीतियाँ और कार्यक्रम (Policioes and Programmes of Lok Dal)**– जनवरी 1980 में हुए लोकसभा के चुनावों के समय लोकदल ने अपना चुनाव आविस–पत्र में यह भी कहा था कि यह करने की आवश्यकता नहीं है

कि लोकदल राष्ट्रीय एकता, सभी धर्मों के लिए आदर, लोकतन्त्र का विकास और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक और आर्थिक एकता के अनुसार समाजवादी समाज की स्थापना के लिए लोकदल द्वारा जारी किए चुनाव आविस–पत्र में वर्णित इस दल की नीतियों और कार्यक्रमों को संक्षिप्त रूप से हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन कर सकते हैं:–

1. **स्वच्छ और योग्य प्रशासन (A clean and efficient Administration)**– लोकदल ने अत्यधिक महत्ता एक ईमानदार और योग्य प्रशासन की स्थापना को दी है। लोकदल एक ऐसा प्रशासन स्थापित करना चाहता है जहाँ सरकारी कर्मचारी पूर्ण उत्तरदायित्व सहित अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण योग्यता सहित निभाएंगे और जिस प्रशासन मे किसी प्रकार की देरी, फिजूलखर्ची और भ्रष्टाचार नहीं होगा। लोकदल का विश्वास है कि भ्रष्टाचार ऊपर से आरम्भ होता है और धीरे–धीरे समस्त समाज को भ्रष्ट कर देता है। इसलिए यदि जनतक जीवन के ऊपरी स्तर पर उच्चकोटि की निजी ईमानदारी का अस्तित्व नहीं होता, तब तक प्रशासन में भ्रष्टाचार को समाप्त करना सम्भव नहीं है। इसलिए लोकदल ऐसी विशेष संस्थाएँ स्थापित करना चाहता है जो भ्रष्टाचार को समाप्त करना सम्भव नहीं है। इसलिए लोकदल ऐसी विशेष संस्थाएँ स्थापित करना चाहता है जो भ्रष्टाचार सरकार की ओर से की जाने वाली पहल कदमी का इन्तजार न करे। भ्रष्टाचार नियन्त्रणों को समाप्त करना चाहता है और अधिकारियों की इच्छुक शक्तियाँ (Discretionary Powers) के प्रयोग सम्बन्धी स्पष्ट नियमों और विधियों को निश्चित करना चाहता है। इस देश का यह विचार है कि भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि दोषी और अयोग्य व्यक्तियों के विरूद्ध कार्यवाही की जायेगी।

2. **कर प्रणाली (Taxation System)**– दल यह भी अनुभव करता है कि प्रचलित कर प्रणाली के अधीन करोड़ों रूपयों पर कोई कर नहीं लगाया जाता और करोड़ों ही रूपये के कर ठीक रूप से उगाहे नहीं जाते। इसलिए लोकदल प्रचलित कर प्रणाली की कीमतों को दूर करके ऐसी कर प्रणाली लागू करना चाहता है, जिस कर के अन्तर्गत करों की चोरी या करों की अदायगी सम्बन्धी हेराफेरी न हो सके। इस दल का यह विचार है कि आमदनी में से कुछ बचत करते हैं उस पर कर नहीं लगाना चाहिए, अपितु जो धन विभिन्न अवसरों पर धनी व्यक्तियों के द्वारा व्यय किया जाता है। उस व्यय पर कर लगाया जाना चाहिए। यह दल ऐसे अप्रत्यक्ष करों (Indirect Taxation) को कम करना चाहता है जिसका भार गरीब व्यक्तियों पर पड़ता है।

3. **चुनाव के लिए राज्य द्वारा वित्तीय सहायता (State Aid for Elections)**– इस दल का विचार है कि चुनावों में काले धन की महत्ता या भूमिका को समाप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि राज्य के द्वारा चुनाव लड़ने के लिए वित्तीय सहायता दी जाये। इस मन्तव्य के लिए यह दल एक सरकारी विधि (State Fund) निश्चित करना चाहता है जिसमें से चुनावों के समय प्रत्याशियों को वित्तीय सहायता दी जा सके। इसके अतिरिक्त इस दल का विचार है कि राजनीतिक दलों को अपने कार्य करने के लिए प्रत्येक वर्ष राज्य की ओर से वित्तीय सहायता दी जानी चाहिए और कानून के द्वारा अब अवश्य निश्चित कर देना चाहिए कि राजनीतिक दल अपने हिसाब–किताब की जांच (Audit) करें और अपने समस्त लेखों को प्रकाशित करें।

4. **सार्वजनिक क्षेत्र** (Public Sector) – इस दल का मत है कि सार्वजनिक क्षेत्र भी राष्ट्र के धन की अत्यधिक बर्बादी करता हैं। इस दल ने अपने आविस–पत्र में कहा था 1971–72 तक सार्वजनिक क्षेत्र में समस्त निगम (Corporation) की अपेक्षा राष्ट्र को उतना लाभ प्राप्त नहीं हो रहा, जितना इन एकाधिकारों से होना चाहिए। लोकदल का विचार है कि सार्वजनिक क्षेत्र की निराशाजनक उपलब्धियों का इन एकाधिकारों में राजनीतिज्ञों और सेवकों का नाजायज हस्तक्षेप है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र के व्यापारों के प्रबन्धकों को इतनी

अधिक सुविधाएँ और इतना वेतन नहीं मिलता जितना कि निजी क्षेत्र के व्यापारों में कार्य कर रहे प्रबन्धकों को दिया जाता है। कम वेतन और उचित सुविधाओं के अस्तित्व के कारण कला कुशल और योग्य व्यक्ति सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहते। लोकदल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह भी वचन दिया थाा कि यह दल जनमत क्षेत्रों के व्यापार की स्वाधीनता स्थापित करेगा और इसके हाथ ही इन व्यापारों के प्रबन्धकों को जिम्मेदार भी बनायेगा ताकि उनके द्वारा की गई गलतियों या असावधानियों की जिम्मेदारी निश्चित की जा सके। यह दल इस विचार का भी समर्थक है कि यदि कोई सार्वजनिक व्यापार निरन्तर घाटा दिखा रहा है तो उस एकाधिकार को तुरन्त बन्द कर दिया जाना चाहिए। परन्तु यदि ऐसा एकाधिकार हमारी अर्थव्यवस्था के मौलिक ढांचे का अनिवार्य अंग है तो उसके द्वारा घाटा दिखाए जाने के बावजूद भी इसको कायम रखा जा सकता है। लोकदल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह स्पष्ट शब्दों में कहा था कि भविष्य में सार्वजनिक क्षेत्र में केवल ऐसे व्यापार और उद्योग या जिन व्यापारों पर अत्यधिक धन व्यय करना निजी क्षेत्र के लिए सम्भव नहीं है।

5. **चुनाव प्रणाली (Electoral System)**– इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में यह स्पष्ट वर्णन किया था कि स्वतन्त्र और विशुद्ध चुनावों के बिना लोकतन्त्र एक ढांग या दिखावा बन जाता है। इसलिए यह दल चुनाव प्रणाली में ऐसे सुधार करना चाहता है तो स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनावों को यकीनी बना सके और इस प्रकार देश में वास्तविक लोकतन्त्रीय पद्धति स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो सके।

6. **प्रैस की स्वतन्त्रता (Freedom of Press)**– यह दल प्रैस की स्वतन्त्रता को लोकतन्त्र की सफलता के लिए एक अनिवार्य शर्त समझता है और इस कारण यह दल प्रैस की स्वतन्त्रता के लिए वचनबद्ध है। यह दल चाहता है कि संविधान में संशोधन करके मौलिक अधिकार वाले अध्याय में प्रैस की स्वतन्त्रता का स्पष्ट वर्णन किया जाना चाहिए।

7. **अन्तर–राजकीय विवाद (Inter-State Disputes)**– इस दल का यह विश्वास है कि शासक दल ने अन्तर–राजकीय विवादों का ठीक रूप में समाधान करने का गम्भीर यत्न कभी नहीं किया है, अपितु ऐसे विवादों को निरन्तर लटकाया हैं। अन्तर–राजकीय झगड़ों के कारण कई बार 'जान नुक़सान' भी हुआ है। इसलिए लोकदल अन्तर–राजकीय विवादों का निपटारा करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 363 के एक स्थायी आयोग (Permanent Commission) स्थापित करने का इच्छुक है। प्रत्येक प्रकार के अन्तर–राजकीय विवाद इस विभाग को सौंपे जाएंगे और केन्द्रीय सरकार समेत सारे राज्यों के लिए इस आयोग के निर्णयों को स्वीकृत करना अनिवार्य होगा।

8. **लोकदल की आर्थिक नीति (Lok Dal's Economic Policy)**– लोकदल ऐसी प्रणाली के पक्ष में भी नहीं है जिस प्रणाली के अन्तर्गत कुछ व्यक्तियों को अन्य लोगों की आर्थिक आवश्यकताओं के शोषण करने की असीमित स्वतन्त्रता प्राप्त हो। यह दल ऐसी प्रणाली के पक्ष में भी जिस प्रणाली के अन्तर्गत राज्य के पास समस्त लोगों की आर्थिक स्वतन्त्रता को नष्ट करने की असीमति या निरंकुश शक्ति प्राप्त हो। लोकदल ऐसे गांधीवादी अर्थव्यवस्था पर विश्वास रखता है जो मुख्य रूप में आत्म रोजगार (Self-Employment) पर आधारित हो। इस दल का विश्वास है कि सम्पति विस्तृत रूप में फैली होनी चाहिए ताकि सम्पत्ति को शोषण का साधन न बनाया जा सके। इस दल ने यह विश्वास दिया था कि यदि इस दल के हाथों में राजनीतिक शक्ति आ गई तो यह दल भी लोगों को कार्य का अधिकार (Right to Work) देगा। इस दल का मत है कि प्रचलित प्रणाली में अमीर अत्यधिक अमीर और गरीब अत्यधिक गरीब हो रहा है। इस दुःखदायक अवस्था का

तब ही अन्त हो सकता है यदि ऐसी अर्थव्यवस्था स्थापित की जाए जिसमें काश्तकारी और घरेलू उद्योगों को प्रमुख स्थान प्राप्त हो। अन्य शब्दों में लोकदल का यह विचार है कि ऐसे व्यापार स्थापित किये जाने चाहिए जिनमें अधिक से अधिक श्रमिकों की भूमिका की आवश्यकता हो। अन्य शब्दों मे यह दल बड़े–बड़े मशीनी उद्योगों के अधिक पक्ष में नहीं है। इस दल का यह मत है कि अर्थव्यवस्था को काश्तकारी और घरेलू उद्योगों पर आधारित करने के साथ ही निजी पूंजीवाद (Private Capitalism) और राज्य पूंजीवाद (State Capitalism) की बुराईयों पर काबू पाया और पूर्ण रोजगार को यकीनी बनाया जा सकता है। यह दल आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण करना चाहता है और धन को केन्द्रित होने से और शक्ति के दुरूपयोग को रोकने के लिए यह दल गांधी जी द्वारा प्रभावित अमानतदारी प्रणाली (Trusteeship System) को अनुभव के तौर पर लागू करने के पक्ष में है। यहाँ यह वर्णन योग्य है कि लोकदल बड़े उद्योगों की स्थापना के विरूद्ध नहीं है, परन्तु यह दल काश्तकारी और घरेलू उद्योगों के विकास के प्रति विशेष ध्यान देना चाहता है।

9. **काश्तकारी का महत्व (Significance of Agricuture)**– लोकदल का यह विश्वास है कि काश्तकारी के विकास के बिना देश का आर्थिक विकास नहीं हो सकता। इसलिए यह दल काश्तकारी के विकास को प्राथमिकता देना चाहता है। इस दल का यह मत है कि यदि हम अपनी जरूरत से अधिक अन्न का उत्पादन करेंगे तब ही हम अन्न को अन्य देशों को भेजने के योग्य हो सकेंगे। इस दल का यह भी मत है कि शीघ्र ही भविष्य में कुछ अन्य देशों को अनाज की अत्यधिक कमी होगी और ऐसी स्थिति में इन देशों में अन्न देकर हम अपनी आर्थिक समस्याओं का समाधान करने के योग्य हो सकेंगे। इसलिए लोकदल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में यह कहा था कि यह दल काश्तकारी के विकास के लिए कोई कमी नहीं रहने देगा और छोटे और साधारण कृषकों को कर्जे की सुविधाएँ दी जायेंगी। इसके अतिरिक्त कृषकों की अच्छी प्रकार के बीज, खाद और सिंचाई के साधनों की सेवाएं उचित दर पर देने का प्रबन्ध किया जायेगा और जो काश्तकारी भूमि सरकार ने सार्वजनिक मन्तव्यों के लिए प्राप्त की है। वह भूमि उसके स्वामियों को वापिस कर दी जाएगी या पट्टे पर दे दी जाएगी यदि निश्चित समय के भीतर सरकार उस भूमि को प्रयोग में नहीं ले आती। इस दल का मत है कि भूतकाल में भूमि के क्षय (Soil Erosion) के प्रति सरकार ने बहुत कम ध्यान दिया है। परन्तु यदि भूमि के क्षय की गति इस प्रकार ही चलती रही तो हमारी भूमि कोई फसल देने के योग्य नहीं रहेगी। इसलिए इस दल का यह विचार है कि भूमि के प्रयोग के साथ–साथ भूमि की रक्षा भी उतनी ही अनिवार्य है। इस दल का विचार है कि राष्ट्र के अस्तित्व का मुख्य आधार भूमि है इसलिए लोकदल देश की भूमि की सुरक्षा के प्रत्येक सम्भव यत्न करेगा।

10. **काश्तकारी–उत्पादन का मूल्य (Pricing of Agricultural Production)**– लोकदल इस विचार का है कि कृषकों को उनकी उपज का उचित मूल्य प्राप्त नहीं होता। कृषक उत्पादन के लिए आवश्यक सामग्री पर जो खर्च को मुख्य मानकर कृषकों को उनके उत्पादन का पारिश्रमिक मूल्य निश्चित करना लोकदल की महत्वपूर्ण नीति है। लोकदल यह नहीं चाहता कि कृषक किसी विवशता के कारण अपने उत्पादन को कम मूल्य पर बेच दें। लोकदल इस विचार का समर्थक है कि यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए तो राजकीय संस्थाओं (State Agencies) को कृषकों की रक्षा के लिए उनके उत्पादन को उचित मूल्य पर क्रय करने के लिए मण्डी में प्रवेश करना चाहिए।

11. **भूमि सुधार** (Land Reform) – लोकदल का इस विचार का समर्थक है कि उत्पादन को बढ़ाने के लिए जहाँ काश्तकारी सम्बन्धी नयी मनोवैज्ञानिक विधियों को ग्रहण करने की आवश्यकता है वहाँ इस मन्तव्य के लिए

काश्तकारी की मनोवृत्ति को भी परिवर्तित करने की आवश्यकता है। इस दल का विचार है कि यदि काश्तकार को उस भूमि के टुकड़े का स्वामी बना दिया जाये तो वह उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक उत्साहित होगा। इसलिए लोकदल मुजाहरों को भूमि का स्थायित्व सौंपने के पक्ष में हैं और जागीरदारी प्रणाली को बिल्कुल समाप्त करना चाहता है। यह दल केवल सेना में कार्य कर रहे सैनिकों को ही अपनी भूमि पट्टे पर देने को आज्ञा देता हैं और अन्य किसी भी कृषक को ऐसा करने से रोकने के लिए अनिवार्य कानून के निर्माण करने के पक्ष में है। यह दल ऐसे व्यक्तियों को भी अपनी भूमि पट्टे पर देने की आज्ञा देता है जो व्यक्ति शारीरिक या मानसिक कारणों के कारण स्वयं काश्तकारी करने के योग्य नहीं है। भूमि सुधार सम्बन्धी सभी कानूनों को यह दल 9वीं अनुसूची (9th Schedule) में अंकित करने का समर्थक है ताकि यह कानून न्यायालयों के न्यायिक पुनर्निरीक्षण के अधिकार क्षेत्र से बाहर रहें।

12. **औद्योगिकरण का नमूना (Pattern of Industrialisation)**– इस दल का विचार है कि औद्योगिक विकास के लिए पूंजी और श्रम दो तथ्यों की आवश्यकता है। हमारे देश में श्रम (Labour) बहुत सस्ती है और पूंजी की अपेक्षा इसकी प्राप्ति आसानी के साथ हो सकती है। इसलिए लोकदल ऐसी औद्योगिक नीति के पक्ष में नहीं है जिसके अन्तर्गत अत्यधिक पूंजी के द्वारा बड़े–बड़े उद्योग स्थापित किए जाएं और श्रम को अधिक से अधिक प्रयोग में न लाया जा सके। अन्य शब्दों में लोकदल पूंजी आधारित उद्योगों (Cepital Intensive Industries) की अपेक्षा श्रम–आधारित उद्योगों (Labour Intensive Industries) को प्राथमिकता देता है। लोकदल ऐसी अर्थव्यवस्था के पक्ष में है जो घरेलू और निम्नस्तर के उद्योगों पर आधारित हो। इस दल का यह विचार है कि नगरी क्षेत्रों के मुकाबले ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक विकास के प्रति अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। परन्तु यह दल पूंजी पर आधारित बड़े–बड़े कारखानों की अपेक्षा ग्रामीण–क्षेत्रों में घरेलू और छोटे उद्योगों को स्थापित करना चाहता है। यह दल इस विचार का भी है कि यदि देश के हित बड़े–बड़े स्तर के उद्योगों (Large Scale Industries) की स्थापना की मांग करते हैं तो ऐसे उद्योग भी स्थापित किए जा सकते हैं। परन्तु ऐसे उद्योग हमारे देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार नहीं होने चाहिए, अपितु घरेलू और छोटे उद्योग ही देश की अर्थ व्यवस्था मुख्य का आधार होने चाहिए। इसी कारण लोकदल ने अपने चुनाव आविस पत्र में स्पष्ट रूप में घोषणा की थी कि वह दल किसी ऐसे माल के उत्पादन के लिए पूंजी आधारित बड़े स्तर के उद्योग स्थापित नहीं करेगा जो अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों का अधिक से अधिक विकास हो सके, इस योजना के उद्देश्य स्थापित नहीं करेगा जो उद्देश्य या जिस माल का उत्पादन घरेलू या निम्न स्तर के उद्योगों के द्वारा किया जा सकता है।

13. **गांवों का कायाकल्प (Rejuvenation of Villages)**– लोकदल ने अपने चुनाव आविस पत्र में यह भी कहा था कि भारत की सम्पूर्ण स्थिति सम्बन्धी एक कड़वी सच्चाई यह है कि 5,75,000 गांवों के पास अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए आर्थिक सामर्थ्य नहीं है। ऐसी स्थिति में गांवों को कायाकल्प करने की विशेष आवश्यकता है। लोकदल के मत के अनुसार स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय गांवों और शहरों में आर्थिक अवस्थाओं सम्बन्धी पाये जाते। परस्पर अन्तर स्वतन्त्रता के पश्चात् कम नहीं हुए हैं, अपितु इसमें वृद्धि हुई है। इसलिए लोकदल ने यह विश्वास दिया था कि लोकदल इन बढ़ रहे अन्तरों को केवल रोकेगा ही नहीं, अपितु एक विशाल स्तर की योजना चलायेगा, जिसके अन्तर्गत गांवों में रहते लोगों को रहने के लिए अच्छे मकान, पीने के लिए शुद्ध जल, सफाई की आधुनिक सुविधाओं, विश्वास योग्य बिजली की सुविधा, आवागमन की अत्यधिक सुविधाएँ, सेहत और शिक्षा सेवाओं आदि देने की व्यवस्था की जायेगी। इस योजना का उद्देश्य एक ऐसा ग्रामीण

समाज स्थापित करना होगा, जिसमें भूमि के स्वामित्व के आधार पर या जात–पात के आधार पर लोगों में भेदभाव या अन्तर न पाए जाते हों। इसके अतिरिक्त लोकदल गांवों को ऐसा रूप देना चाहता है कि गांव में ही ग्रामीण लोगों को रोजगार प्राप्त हो सके और आधुनिक जीवन की आवश्यक जरूरतें लोगों को मिल सके। यह दल ग्रामीण क्षेत्र में ही ऐसे एकाधिकारी को भी स्थापित करना चाहता है जिनका काश्तकारी के साथ सम्बन्ध नहीं है। इस दल के विचार में ऐसा करने के साथ ग्रामीण क्षेत्र में लोगों को रोजगार प्राप्त होगा। परन्तु यहाँ यह वर्णन योग्य है कि यह दल पूंजी–आधारित एकाधिकारी के मुकाबले श्रम–आधारित एकाधिकारों को प्राथमिकता देता है।

14. **श्रम नीति (Labour Policy)**– लोकदल श्रम नीति का भी पुनः निर्माण ऐसे रूप में करना चाहता है जो औद्योगिक क्रान्ति को विकसित कर सके, उत्पादन को रोकने की सद्भावनाओं को समाप्त कर सकें, उत्पादन और श्रमिकों की सामर्थ्य में वृद्धि कर सके और श्रमिकों के साथ किए जाते दुर्व्यवहार को जड़ से समाप्त कर सकें। यह दल श्रमिकों के व्यापारिक संघ (Trade Unions) बनाने के अधिकार को स्वीकार करता है, परन्तु इस दल का यह विचार है कि यह श्रमिकों को व्यापारिक संघ के साधनों के ऐसे रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिससे देश की अर्थ–व्यवस्था को क्षति हो। लोकदल यह भी चाहता है कि उत्पादन के विकास के साथ श्रमिकों के वेतन की वृद्धि को जोड़ दिया जाना चाहिए। इस दल यह भी चाहता है कि उत्पादन के विकास के साथ श्रमिकों के वेतन की वृद्धि को जोड़ दिया जाना चाहिए। इस दल का यह विचार है कि औद्योगिक प्रबन्ध में अनुशासन हीनता का मुख्य कारण यह है कि विभिन्न औद्योगिक या व्यापारिक एकाधिकारों में राजनीति कृति व्यापारिक संघ (Politicised Trade Unions) मौजूद है। इसलिए लोकदल चाहता है कि कानून के द्वारा यह निश्चित कर देना चाहिए कि इस बड़े एकाधिकार में केवल एक ही व्यापारिक संघ हो सकता है। व्यापारिक संघ की मान्यता या निर्माण सम्बन्धी एकाधिकार के श्रमिकों के द्वारा किया जा सकता है। लोकदल शिशु–कृत (Child Labour) और वचनबद्ध कृत (Bonded Labour) पर तुरन्त कानूनी पाबन्दी लाना चाहता है।

15. **अनुसूचित जातियां और कबीले** (Scheduled Castes and Tribes) – लोकदल भारतीय समाज में जाति की प्रमुखता को समाप्त करना चाहता है। इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह भी कहा था कि सरकारी गजटिड पदों पर नियुक्तियाँ करते समय उन युवकों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो अपनी जाति से बाहर शादी करते हैं। लोकदल ने यह भी विश्वास दिया था कि यह दल हरिजनों या अनुसूचित जातियों और कबीलों की भलाई के लिए विशेष कार्य करने का समर्थक है। यह दल इन जातियों और कबीलों के लिए सेवाओं में स्थान सुरक्षित रखने की प्रथा को जारी रखना चाहता है और इन सुविधाओं के अतिरिक्त लाइसेंस या परमिट देने में मामलों सम्बन्धी भी इन जातियों के लोगों ने विशेष संरक्षण (Safeguards) निश्चित करने का समर्थक है। अन्य शब्दों में परमिट या लाईसेंसों का कुछ हिस्सा इन जातियों के लोगों को सुरक्षित रखना लोकदल की नीति में शामिल है।

16. **विदेशी नीति और सुरक्षा (Foreign Policy and Defence)**– लोकदल राष्ट्रीय हितों के अनुकूल विदेशी नीति ग्रहण करना चाहता है। यह दल उपनिवेशवाद, नव उपनिवेशवाद और नस्लवाद का विरोधी है। लोकदल सभी राष्ट्रों से मित्रता करना चाहता है और विदेशी क्षेत्र में यह दल गुटबन्दी से रहित नीति (Policy of Non-Alignment) के लिए वचनबद्ध है। अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तमयी रूप में हल करना एक नई और उचित अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था स्थापित करना और तीसरे संसार के राष्ट्रों से सहयोगी के रूप में कार्य करना

लोकदल की विदेशी नीति की मुख्य विशेषताएँ हैं। लोकदल भारत के पड़ोसी देशों के साथ चिरकाल से लटके आ रहे विवादों को निपटाना चाहता है और एक अच्छी पड़ोसी नीति को विकसित करने का इच्छुक है। सैनिक गुटबन्दियों को यह दल समाप्त करना चाहता है और विश्वव्यापी निःशस्त्रीकरण भी इस दल को विदेश नीति का महत्वपूर्ण भाग है। लोकदल सम्पूर्ण विश्व में मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए वचनबद्ध है। इस दल का यह भी मत है कि देश की अच्छी विदेशी नीति इसकी रक्षा का सबसे बड़ा साधन है। लोकदल भारतीय शस्त्रधारी सेनाओं का प्रत्येक पक्ष से आधुनिकीकरण करना चाहता है और देश की रक्षा सामर्थ्य को पूर्ण रूप में विकसित करने का समर्थक है। यह दल भूतपूर्व सैनिकों की सेवाओं का प्रगतिशील कार्यों को प्रयोग में लेने का समर्थक है।

**निष्कर्ष (Conclusion)**– भारतीय लोकदल का निर्माण करने वाले नेताओं ने जनता पार्टी का निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। परन्तु अन्य राजनीतिक दलों से मिलकर ये नेता जनता पार्टी को स्थिर न रख सके तथा जनता पार्टी से अलग होकर इस दल का निर्माण कर लिया। इस दल के निर्माण के समय यह आशा उत्पन्न हुई थी कि किसी समय यह राजनीतिक दल केन्द्र में कांग्रेस (आई) का विकल्प (Alternative) बन सकता है। परन्तु इसकी गत चार वर्षों की कार्य प्रणाली ने इस आशा को लगभग समाप्त ही कर दिया। उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा को छोड़कर शेष राज्यों में इस दल का कोई विशेष प्रभाव नहीं है।

भारत की वर्तमान दल राजनीति से यह अनुमान लगाना कुछ कठिन है कि भविष्य में लोकदल किस दिशा की ओर जायेगा। परन्तु लोकदल सम्बन्धी यह तथ्य बिना किसी वाद–विवाद के प्रायः स्वीकार किया जाता है कि विशाल स्तर के उद्योगों की विरोधता और घरेलू उद्योगों को भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल आधार बनाना इस दल की अत्यन्त दोषपूर्ण नीति है। आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी युग में विशाल स्तत के उद्योगों को महत्ता को झूठलाया नहीं जा सकता। यह ठीक है कि जब तक हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्र का ठीक रूप से विकास नहीं होता और कृषकों को उनके परिश्रम कापूरा फल प्राप्त नहीं होता, तब तक भारत में समाजवादी समाज या समान (Equalitarian Society) की स्थापना नहीं हो सकती परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ग्रामीण क्षेत्र के विकास के साथ–साथ नगरों का सर्वोन्मुखी विकास के प्रति भी ध्यान देना अनिवार्य है। लोकदल की स्थापना सम्बन्धी यह तथ्य स्वीकार करने से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि इस दल ने ग्रामीण क्षेत्र में चेतनता और जागृति विकसित की है और प्रत्येक राजनीतिक आन्तरिक फूट का शिकार है। यदि लोकदल के संगठन को प्रभावशाली और शक्तिशाली बनाने के सच्चे यत्न किए जायें और इस दल में आन्तरिक एकता स्थापित करने के लिए लगन के साथ भरपूर यत्न किए जायें तो सम्भावना हो सकती है कि यह दल भारतीय राजनीति में शासक दल के लिए गम्भीर चुनौती के रूप में प्रकट हो सके।

## भारतीय जनता पार्टी (Bharatiya Janata Party)

मार्च 1977 के लोकसभा के चुनावों से पहले भारतीय राजनीति में भारतीय जनमत नाम का महत्वपूर्ण राजनीतिक दल मौजूद था। इस दल को जन्म देने वाले हिन्दू महासभा के प्रमुख नेता डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी थे। 21 अक्तूबर 1951 को दिल्ली में सम्मेलन हुआ, जिसमें प्रमुख हिन्दू नेता विशेषतया सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन में ही भारतीय जनसंघ की स्थापना की गई और डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी को इस नये राजनीतिक दल का प्रथम प्रधान मनोनीत किया गया। कुछ लोगों को यह मत है कि जनसंघ हिन्दू महासभा का ही बच्च था। विचारकों का एक और मत यह भी है कि जनसंघ का जन्म राष्ट्रीय स्वयं सेवक के सदस्य थे। 1977 में इस दल ने अन्य दलों के साथ मिलकर जनता पार्टी का निर्माण किया था। जुलाई 1979 तक जनता दल की सरकार केन्द्र में कायम रही और भूतपूर्व

जन–संघ के प्रमुख नेता महत्वपूर्ण जनतक पदों पर सुशोभित रहे थे। जनता पार्टी आन्तरिक फूट का शिकार थी और इसी कारण इस दल के नेता एक–दूसरे के विरूद्ध दोष लगाते रहते थे। जनता दल में भूतपूर्व भारतीय लोकदल (B.L.D.) और समाजवादी दल भी सम्मिलित हुए थे। इन दलों के नेता यह दोष प्रायः लगाते थे कि भूतपूर्व जनसंघ के सदस्य सरकारी दफ्तरों में अपना प्रभाव जा रहे हैं और सरकार के प्रत्येक विभाग में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का प्रभाव बढ़ रहा है। भूतपूर्व भारतीय लोकदल और समाजवादी दल के नेता यह मांग करते थे कि जनता दल और राष्ट्रीय सेवक संघ में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। अन्य शब्दों में वे यह चाहते थे कि एक व्यक्ति केवल एक ही राजनीतिक दल का सदस्य हो सकता है और किसी अन्य ऐसी संस्था का सदस्य नहीं हो सकता जिसका स्वरूप अधिकांश भी साम्प्रदायिक या राजनीतिक हो। इसलिए यह नेता मांग करते थे कि जनता पार्टी में सम्मिलित हुए भूतपूर्व जनसंघ के सदस्यों को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (R.S.S.) से अपने सम्बन्ध तोड़ लेने चाहिए। इसके साथ ही यह नेता जनता दल के अधिकारियों पर बल देते थे कि यह दोहरी सदस्यता (Dual membership) पर पाबन्दी लगा दें। जनता दल की आन्तरिक फूट के और अनेकों कारणों में से एक कारण इस दल के कुछ सदस्यों की दोहरी सदस्यता का मामला था। जनता पार्टी अपने शासन काल में इस जटिल समस्या का कोई समाधान न ढूंढ सकी।

जनवरी 1980 में लोकसभा के चुनाव हुए थे। इन चुनावों में जनता दल को अपमानजनक पराजय का मुख देखना पड़ा था। इस निराशाजनक पराजय ने जनता पार्टी के अधिकारियों को दल के सदस्यों को दोहरी सदस्यता के मामले को निपटाने के लिए कुछ सीमा तक मजबूर कर दिया क्योंकि इस बात पर यह दोष लगने लगे थे कि यह दल भूतपूर्व जनसंघ के अतिरिक्त किसी अन्य वर्ग का विशेष प्रतिनिधित्व नहीं करता। अन्त में 19 मार्च, 1980 को जनता संसदीय बोर्ड (Janata Parliamentary Board) ने यह निर्णय लिया, इस दल का कोई भी विधायक या अधिकारी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की दैनिक गतिविधियों में हिस्सा नहीं लेगा। 4 अप्रैल 1980 को जनता दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी (National Executive) ने जनता संसदीय बोर्ड के उस निर्णय की पुष्टि कर दी। जनता दल के भूतपूर्व जनसंघ सदस्यों को जनता दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी का यह निर्णय स्वीकार नहीं था। इसलिए उन्होंने जनता पार्टी से त्यागपत्र दे दिए और 6 अप्रैल 1980 को उन्होंने दिल्ली से एक सम्मेलन किया। यह सम्मेलन 5 और 6 अप्रैल दो दिन चलता रहा और अन्त 6 अप्रैल 1980 को भारतीय जनता दल (Bharatiya Janata Party) नाम का पृथक राजनीतिक दल अस्तित्व में आया था। जनता सरकार के भूतपूर्व विदेशी मन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी (Attal Bihari Vajpayee) को इस दल का सर्व सम्मति से प्रधान मनोनीत किया गया। यह ठीक है कि इस दल में राम जेठमलानी, श्री सिकन्दर बख्त, श्री शान्ति भूषण आदि जैसे गैर–जनसंघी सदस्य भी सम्मिलित हुए थे, परन्तु मुख्यतया भारतीय जनता दल की स्थापना भूतपूर्व भारतीय जनसंघ को पुनः जीवित करने के समान है। 24 अप्रैल 1980 को भारतीय जनता पार्टी को चुनाव आयोग द्वारा मान्यता दे दी गई थी।

भारतीय जनता पार्टी का कार्यक्रम (Programme of Bharatiya Janata Party) – यह दल जनवरी 1980 के चुनावों के पश्चात् अस्तित्व में आया था। मई 1980 में 9 राज्यों के विधानसभाओं के चुनावों के समय इस दल को पृथक–पृथक राज्य शाखाओं ने अपने चुनाव उद्देश्यों की घोषणा की थी। जब 6 अप्रैल 1980 को यह दल अस्तित्व में आया था तब उस समय दल के प्रथम अध्यक्ष श्री वाजयपेयी ने दल की नीतियों सम्बन्धी एक संक्षिप्त ब्यान दिया था। उस ब्यान के आधार पर और मई, 1980 में 9 राज्यों के विधानसभाओं के चुनावों के समय इस दल की राज्य शाखाओं के द्वारा जारी किए चुनाव उद्देश्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि इसकी प्रमुख नीतियाँ इस प्रकार है –

1. यह दल वंश–तानाशाही का विरोधी है।

2. श्री जय प्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रांति (Total Revolution) सम्बन्धी आदर्श को लागू करना इस दल का प्रमुख उद्देश्य है।

3. राष्ट्रवाद, लोकतन्त्र और समाजवाद के आदर्शों को शक्तिशाली बनाना इस दल के कार्यक्रम में शामिल हैं।

4. यह दल आर्थिक और राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण करना चाहता है।

5. यह दल गैर–साम्प्रदायिक और सिद्धान्तपूर्ण राजनीति का समर्थक है।

6. यह दल की नीतियों का मुख्य आधार और उद्देश्य–ग्रामीण क्षेत्र का विकास।

अस्तित्व में लाने के पश्चात् इस दल ने अपनी नीतियों तथा कार्यक्रम सम्बन्धी कई प्रस्ताव पास किए तथा दल के अधिकारियों के समय–समय पर कुछ घोषणाएँ भी की गई है। उन प्रस्तावों तथा घोषणाओं द्वारा इस दल ने निम्नलिखित नीतियों तथा कार्यक्रमों पर अपना विश्वास प्रकट किया है :–

1. उत्तर–पूर्वी क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना (Establishment of National Commission of North-East Region) – 1979 से आयात राज्य में विदेशियो को राज्य में से निकालने सम्बन्धी आसामी विद्यार्थियों तथा कुछ दूसरे संगठनों द्वारा आन्दोलन चलाया जा रहा है। इस आन्दोलन के कारण आसाम में स्थिति बड़ी गम्भीर रूप की बनी हुई है। उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र के दूसरे राज्यों में भी शान्तिमयी स्थिति नहीं पाई जाती है। स्थिति की गम्भीरता तथा नाजुकता के कारण 15 जुलाई 1980 को इस दल के प्रधान श्री वाजपेयी ने अगरतला (Agartala) में भाषण देते हुए यह मांग की थी कि उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र की समूची समस्या का अध्ययन करने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग नियुक्त किया जाये। यह दल चाहता है कि शासकदल तथा दूसरे राजनीतिक दल राजनीतिक भावनाओं से ऊपर उठकर इस क्षेत्र की समस्याओं को हल करने के लिए यत्न करें। इस दल का यह मत है कि यदि ऐसा न किया तो इस क्षेत्र की राजनीतिक समस्या देश की अखण्डता के लिए एक गम्भीर खतरा सिद्ध हो सकती है।

2. गांधीवाद समाजवाद (Gandhian Socialism) – 30 सितम्बर 1980 को बम्बई में हुए इस दल के राष्ट्रीय सम्मेलन में इस दल ने गांधीवादी समाजवाद को अपनी राजनीतिक विचारधारा (Political Ideology) के रूप में स्वीकार किया था। इस दल का विचार है कि स्वतन्त्रता (Freedom) तथा रोजगार (Employment) गांधीवाद के दो प्रमुख सिद्धान्त है। यह दल चाहता है कि आर्थिक शक्ति न ही राज्य के पास और न ही विद्यार्थियों के हाथ में केन्द्रीय हो। यह दल अहिंसक साधनों द्वारा सहयोगी स्वतन्त्र राज्य (Co-operative Commonwealth) स्थापित करना चाहता है।

3. पांच वचनबद्धताएं (Five Commitments) – 28 दिसम्बर से 30 दिसम्बर, 1980 तक इस दल का राष्ट्रीय सम्मेलन बम्बई में हुआ था। इस दल ने पांच सिद्धान्तों को अपनी नीतियों का मूल आधार बनाने की घोषणा की थी। इन पांचों सिद्धान्तों की इस दल ने (हमारी पांच वचनबद्धताएँ) (Our five commitments) का नाम दिया था। यह पांच सिद्धान्त या वचनबद्धताएं इस प्रकार है :–

   (i) राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीय एकीकरण (Nationalism and National Integration)

   (ii) लोकतन्त्र (Democracy)

   (iii) सकारात्मक धर्म निरपेक्षता (Positive Secularism)

(iv) गांधीवाद समाजवाद (Gandhian Socialism)

(v) मूल्यों या सम्मानों पर आधारित राजनीति (Value based Politics)

4. आर्थिक नीति (Economics Policy) – बम्बई में हुए राष्ट्रीय सम्मेलन में इस दल ने अपनी आर्थिक नीति ग्रहण की थी। उस आर्थिक नीति की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैः–

(i) आर्थिक शक्ति का विशाल स्तर पर विकेन्द्रीयकरण।

(ii) एकाधिकारों (Monopolies) के विकास को रोकना।

(iii) शोषण को रोकने के योग्य प्रबन्ध करना।

(iv) उत्पादन को बढ़ाना तथा सामाजिक न्याय को विश्वासपूर्ण बनाना।

(v) ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र में रोजगार के साधनों को काफी विशाल स्तर पर विकसित करके गरीबी को दूर करना।

(vi) राष्ट्रीय निवेश (National Investment) की समूची प्रणाली में प्रचण्ड परिवर्तन (Drastic Change) करना।

(vii) काले धन का अन्त करने के लिए कर प्रणाली में उचित सुधार करने तथा करों का उल्लंघन करने वालों को कठोर दण्ड देना।

(viii) सारी उपभोगी सामग्री (Consumer Goods) का उत्पादन घरेलू या छोटे क्षेत्र (Small Sector) में किया जायेगा।

(ix) सारी फालतू भूमि को भूमिहीन व्यक्तियों में बांटने के लिए तीन वर्षीय समयबद्ध योजना तैयार एवं लागू की जायेगी।

(x) ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार की विश्वासपूर्ण बनाने के लिए रोजगार गारन्टी योजना (Employment Guarantee Scheme) लागू करना।

(xi) पशुओं और फसलों का बीमा करने सम्बन्धी योजनाएं लागू करना।

(xii) यह दल चाहता है कि औद्योगिक क्षेत्र में न तो सार्वजनिक क्षेत्र और न ही निजी क्षेत्र का एकाधिकार हो इस दल का विचार है कि हथियारों का उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र में ही होना चाहिए।

(xiii) यह दल उपभोगी नियम (Consumer Corporation) स्थापित करना चाहता है। इस निगम का मुख्य काम उपभोगी सामग्री या वस्तुओं की उपलब्धि को उचित मूल्य को विश्वासपूर्ण बनाना होगा।

(xiv) यह दल चाहता है कि किसानों को उनके उत्पादन का लाभदायक मूल्य दिया जाये।

(xv) यह दल आयकर (Income Tax) के दरों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन करने का समर्थक है।

5. गरीबी जलावतन विधि (Banish Poverty Fund) – यह दल पांच अरब रूपए की गरीबी जलावतन निधि स्थापित करना चाहता है। आरम्भ में यह निधि केवल एक वर्ष के लिए होगी तथा उसके बाद हर वर्ष इस निधि की रकम को बढ़ाया जा सकता है। इस निधि में आधा धन केन्द्रीय सरकार तथा आधा धन राज्य

सरकार द्वारा दिया जाना चाहिए। यह निधि अति गरीब लोगों के वर्गों को ऊँचा उठाने के लिए प्रयोग की जाएगी। इस दल का यह विचार है कि यदि इस निधि का उचित संचालन किया जाए तो केवल पांच सालों के समय के अन्दर लगभग दस करोड़ व्यक्ति गरीबी सीमा (Poverty Line) के ऊपर उठाए जा सकते हैं।

6. सत्तावाद के विरूद्ध (Against Authoritarianism) – यह दल लोकतन्त्र का समर्थक तथा सत्तावाद का विरोधी है। 28 दिसम्बर, 1980 को बम्बई में दल के राष्ट्रीय सम्मेलन को सम्बोधन करते हुए दल के प्रधान श्री ए०बी० वाजपेयी ने अपने प्रधानगी भाषण में कहा था कि उनका दल सत्तावाद तथा अराजकता का कठोर विरोधी है। यह दल बिना किसी भेदभाव के सब भारतीयों को हर प्रकार के अधिकार प्रदान करने के पक्ष में है ताकि हमारे देश में प्रजातन्त्रीय प्रणाली स्थिर हो सके।

7. अनुसूचित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रखने के पक्ष में (In favour of Reservations for Scheduled Caste) – 26 अप्रैल, 1981 को इस दल की राष्ट्रीय परिषद् (National Council) ने कोचीन में एक प्रस्ताव द्वारा यह घोषित किया था कि यह दल अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े हुए कबीलों के लिए स्थान सुरक्षित रखने के पक्ष में है। इसके साथ ही इस दल की राष्ट्रीय परिषद् ने यह मांग की थी कि उच्च शक्ति वाली एक समिति (A High Powered Committee) नियुक्त की जाये तथा वह समिति इस सम्बन्धी सिफारिशें करे कि स्थान सुरक्षित रखने की नीति के वास्तविक उद्देश्य किस तरह प्राप्त किये जा सकते हैं। इस दल ने केन्द्रीय सरकार से यह भी मांग की थी कि वह एक ऐसा दस्तावेज प्रकाशित करे, जिसमें यह बताया जाये कि स्थान सुरक्षित रखने की नीति के वास्तविक उद्देश्य किस तरह प्राप्त किये जा सकते हैं। इस दल ने केन्द्रीय सरकार से यह भी मांग की थी कि वह एक ऐसा दस्तावेज प्रकाशित करे जिसमें यह बताया जाये कि स्थान सुरक्षित रखने की नीति को लागू करने से कौन–कौन से तथ्य सामने आये हैं तथा यह नीति किस सीमा तक ठीक रूप में लागू की गई है।

मई 1980 में हुए 9 राज्यों के विधानसभाओं के चुनावों में इस दल ने कोई विशेष महत्वपूर्ण विजय प्राप्त नहीं की थी। परन्तु इस सम्बन्धी हम यह कह सकते हैं कि उस समय इसकी आयु केवल दो महीने थी। इस अल्प समय में कोई भी राजनीतिक दल लोकप्रिय नहीं बन सकता। मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली में इस दल का अत्यधिक प्रभाव है। उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों के कई भागों में इस दल को कुछ प्रसिद्धि प्राप्त हैं। परन्तु अन्य राज्यों में इस दल का प्रभाव–क्षेत्र अभी स्थापित नहीं हुआ है। मई, 1982 के चुनावों में इस दल ने केरल में 68 उम्मीदवार खड़े किए थे, परन्तु इस दल का कोई भी उम्मीदवार सफल नहीं हुआ। हिमाचल प्रदेश में इस दल के 56 उम्मीदवारों में से 39 उम्मीदवार और हरियाणा में 23 उम्मीदवारों में 6 उम्मीदवार सफल हुए थे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह दल भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करने के योग्य हो सकता है, पर इस योग्य होने से पहले इस दल के नेताओं को लोगों को यह विश्वास करवाने के लिए कि यह दल भूतपूर्व जनसंघ का नया रूप नहीं है, इसके लिए बड़े कठोर और गम्भीर यत्न करने पड़ेंगे। यदि इस दल के नेता भारतीय लोगों को विश्वास न दिला सके तो यह केन्द्रीय स्तर पर कोई विशेष भूमिका अभिनीत करने के योग्य नहीं हो सकेगा। राष्ट्रीय हित यह मांग करते हैं कि यह दल समस्त धर्मों तथा वर्गों के प्रतिनिधि के रूप में उभरने के लिए यत्न करे ताकि शासक दल को परिवर्तित चुनौती देने के योग्य हो सके।

12वीं लोकसभा के चुनाव (1998) और भाजपा का चुनाव घोषणा पत्र – भारतीय जनता पार्टी ने फरवरी 1998 लोकसभा चुनावों के लिए जारी किए गए घोषणा पत्र में उन सब मुद्दों का समावेश किया है जिन पर वह निरन्तर जोर देती रही है, और यह भी बताने का प्रयास किया है कि वह देश को किस दिशा में मोड़ना चाहती है। भाजपा ने

घोषणा पत्र में पचास प्रमुख वायदे किये हैं। ये वायदे इस प्रकार है :–

1. भाजपा प्रतिबद्ध है कि अयोध्या में उस जन्म स्थान पर भव्य श्रीराम मन्दिर निर्माण हो सके, जहाँ इस समय एक अस्थाई मन्दिर है। पार्टी मन्दिर के निर्माण के लिए आम सहमति, कानूनी एवं संवैधानिक मार्गों का पता लगाएगी।

2. भाजपा 50 वर्षों के अनुभव के प्रकाश में भारत के संविधान की भली–भांति समीक्षा करने के लिए एक आयोग बनाएगी, जिसमें संविधान के विशेषज्ञ और प्रतिष्ठित संसद विशेषज्ञ होंगे।

3. भाजपा संविधान के अनुच्छेद 356 के दुरूपयोग को रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाने के लिए प्रतिबद्ध है।

4. भाजपा उत्तरांचल, वनांचल, विदर्भ और छत्तीसगढ़ की अलग राज्य के रूप में स्थापना करेगी। दिल्ली को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया जाएगा।

5. भाजपा धारा 370 को समाप्त करेगी।

6. भाजपा सत्ता में आने पर तुरन्त एक व्यापक चुनाव सुधार विधेयक पेश करेगी, जिसके लिए बहुत कुछ काम किया जा चुका है, परन्तु उस पर अमल नहीं किया गया है। भाजपा पार्टियों के लिए लेखा परीक्षित हिसाब–किताब सार्वजनिक जांच के लिए प्रस्तुत करने की अनिवार्य कर देगी।

7. भाजपा आतंकवाद का सामना करने के लिए उपयुक्त कानून बनाएगी और साथ ही ध्यान रखेगी कि उस कानून के दुरूपयोग की कोई गुंजाइश न हो और शान्ति व्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्य सरकार को समय पर सहायतार देगी। स्थानीय पुलिस बलों की मदद के लिए पर्याप्त केन्द्रीय पुलिस भेजेगी। हम एक दंगा मुक्त भारत बनाएंगे।

8. भाजपा सरकारिया आयोग की सिफारिशों को तत्काल लागू करेगी। भाजपा राज्यपालों की नियुक्ति से पूर्व राज्य सरकारों से परामर्श करेगी और ऐसे उपाय ढूंढ़ेगी, जिनसे राजभावनों का दुरूपयोग राजनतिक प्रयोजनों के लिए न किया जा सके। भाजपा राज्यों के लिए संसाधनों का आबंटन बढ़ाएगी।

9. भाजपा प्रधानमंत्री सहित सार्वजनिक पद पर प्रतिष्ठित किसी भी व्यक्ति के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के लिए लोकपाल नियुक्त करेगी। भाजपा प्रत्येक निर्वाचित प्रतिनिधि के लिए आवश्यक कर देगी कि वह अपनी तथा अपनी पति–पत्नी, आश्रित बच्चों और माता–पिता की आय और सम्पत्ति का ब्यौरा 90 दिन के अन्दर सार्वजनिक करे। इन घोषित ब्यौरों की सार्वजनिक जांच की जा सकेगी और इन्हें प्रतिवर्ष देना होगा।

10. भाजपा ऐसी नीतियाँ अपनाएगी, जिससे सकल घरेलू उत्पाद की सतत् 8–9 प्रतिशत की अभिवृद्धि की वार्षिक दर बनाए रखी जा सके। इसका मतलब होगा कृषि में वृद्धि की कम से कम 5 प्रतिशत की वार्षिक दर और औद्योगिक वृद्धि की कम से कम 12 प्रतिशत की वार्षिक दर बनाए रखी जाए।

11. भाजपा सरकार प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों के दायित्व की स्वेच्छा से निर्वहन की एक पद्धति तैयार करेगी, जिसमें कुछ चुने हुए मामलों में निर्धारित कर की परीक्षण के तौर पर जांच की जाएगी और करवंचको की दोष सिद्धि में शीघ्रता लाएगी।

12. भाजपा सरकार जापान में एम.आई.टी.आई की तरह एक ढांचागत मंच के द्वारा भारतीय उद्योग के साथ दैनिक कार्यकारी सम्बन्ध सुनिश्चित करेगी।

13. भाजपा प्रतिवर्ष एक करोड़ नौकरियों का सृजन करेगी। हम ऐसे क्षेत्रों पर बल देंगे जिनमें रोजगार की बहुत अधिक सम्भावनाएँ हैं, जिनमें लघु कारीगर आधारित एवं ग्रामीण उद्योग, ढांचागत सुविधाएँ, आवास (शहरी एवं ग्रामीण), निर्माण, कृषि, परती भूमि विकास तथा वान्निकी और निर्यात के लिए सघन श्रम शक्ति उत्पादन शामिल है।

14. भाजपा लघु उद्योग के क्षेत्र को जो हमारी अर्थव्यवस्था और रोजगार की रीढ़ है, न ही देश के बड़े औद्योगिक घरानों और न ही विदेशी कम्पनियों की असमान स्पर्धा की मुसीबत में डालेगी।

15. भाजपा भागीदारी (अनिगमित) क्षेत्र के लिए एक पृथक विकास बैंक की स्थापना पर भी विचार करेगी। भागीदारी क्षेत्र के योगदान के बारे में एक चेतना उत्पन्न करने तथा राष्ट्रव्यापी शासकीय ज्यादतियों से इसकी रक्षा करने के लिए एक राष्ट्रीय कानून बनाने का कार्यक्रम भी शुरू किया जाएगा।

**13वीं लोकसभा के चुनाव (सितम्बर–अक्तूबर 1999 और भाजपा)**– 13वीं लोकसभा चुनावों के अवसर पर भाजपा ने अपना पृथक् घोषणा–पत्र जारी नहीं किया। राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन का प्रमुख घटक होने के कारण पार्टी ने राजग घोषणा–पत्र के आधार पर ही चुनाव लड़ा। इस चुनाव में पार्टी ने राम मन्दिर, अनुच्छेद 370, समान नागरिक संहिता जैसे विवादास्पद मुद्दों को फिलहाल ठण्डे बस्ते में डाल दिया। 24 दलों ने राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन को साथ लेकर अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा ने 339 सीटों पर प्रत्याशी खड़े कर 182 सीटें (23-70% मतों के साथ) हासिल की। यह निश्चित रूप से अटल लहर वाला चुनाव था। वाजपेयी के मुकाबले दूसरे नेता बौने, क्षेत्रीय या महज अनुभवहीन दिखे। इन चुनावों में भाजपा ने दक्षिण में अपनी स्थिति मजबूत की और असम में नया आधार बनाया है।

**चुनाव 1999 : राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के घोषणा–पत्र के प्रमुख बिन्दु**

- विदेशी मूल के लोगों को विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका में उच्च पद देने पर पाबन्दी।
- लोकसभा अपना कार्यकाल पूरा करें, इसकी पक्की व्यवस्था।
- घरेलू उद्योगों को खास महत्व।
- नई सूचना प्रौद्योगिकी नीति।
- स्वरोजगार और महिलाओं के उद्यमों को कर्ज देने के लिए बैंक की स्थापना।
- राष्ट्रीय बचत को सकल घरेलू उत्पाद के 24 प्रतिशत से बढ़ाकर 30 प्रतिशत करना।
- योजना राशि का 60 प्रतिशत कृषि और ग्रामीण विकास पर।
- निजी आपरेटरों को नियन्त्रित करने के लिए प्रसारण विधेयक।

इंडिया टुडे ने लिखा है : ''दशक (1990) शुरू होते ही कांग्रेस का परिवार राज खत्म हुआ और गठजोड़ा की राजनीति का दौर शुरू हुआ वक्त की नब्ज को भाजपा ने दूसरों के मुकाबले अच्छी तरह पकड़ा कांग्रेस के बाहरी

समर्थन से चलने वाले 'तीसरे मार्चे' के शासन को झेलने के बाद 1998 में भाजपा नेतृत्व वाले गठबन्धन के लिए आधार बन गया। लेकिन अन्ना द्रुमुक के साथ महंगे गठबन्धन और सरकार गिरने के बाद भाजपा नेतृत्व वाला इन्द्रधनुषी गठबन्धन दोबारा सत्ता में आ गया भाजपा अपनी भगवा विचारधारा को गौण करके इन्द्रधनुष के दोनों सिरों को पकड़े रखना सीख गई।''

## भारतीय जनता पार्टी का चेन्नई घोषणा–पत्र

28–30 दिसम्बर, 1999 को भाजपा की राष्ट्रीय परिषद ने अपनी चेन्नई बैठक में चैन्नई घोषणा–पत्र को स्वीकृति प्रदान की। गृहमन्त्री लाल कृष्ण आडवाणी के अनुसार यही घोषणा–पत्र अब भाजपा की आगे की सोच है। घोषणा–पत्र में राम जन्मभूमि सहित सभी विवादित मुद्दों को दरकिनार कर राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन (राजग) के एजेण्डे को निष्ठापूर्वक लागू करने का संकल्प व्यक्त किया गया है। प्रारूप में कहा गया है कि हर कार्यकर्त्ता को यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि राजग के एजेण्डे को छोड़कर पार्टी का अपना कोई एजेण्डा नहीं है। अल्पसंख्यकों के बारे में पार्टी का दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए घोषणा–पत्र में कहा गया है कि भाजपा कभी एक–दूसरे के धर्म में मतभेदों को राष्ट्र निर्माण के मार्ग में बाधक नहीं बनने देगी।

संक्षेप में, भाजपा ने अपने को नई सदी के लिए तैयार करने के लिए जारी 'चेन्नई घोषणा–पत्र' के प्रारूप में राम जन्मभूमि सहित सभी विवादित मुद्दों को अलग रखकर राजग के एजेण्डे को निष्ठापूर्वक लागू करने तथा देश को बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के कृत्रिम विभाजन से मुक्त करने का संकल्प लिया है।

## साम्यवादी (Communist Pary)

एन.एन. राय की प्रेरणा से 26 दिसम्बर, 1925 को भारत में साम्यवादी दल की स्थापना हुई। राय की सलाह ने साम्यवादी दल कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की शाखा मान लिया गया और सन् 1928 में कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल ने ही भारत में साम्यवादी दल को कार्य प्रणाली निश्चित की। यथार्थ में भारतीय साम्यवादी आन्दोलन सोवियत संघ की देखरेख में ही शुरू हुआ और कई भारतीय साम्यवादियों को सोवियत संघ में प्रशिक्षण भी दिया गया। स्वाधीनता आन्दोलन के समय अनेक साम्यवादी नेताओं ने कांग्रेस के साथ मिलजुलकर कार्य किया, किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के समय कांगेस और साम्यवादी नेताओं के दृष्टिकोणों में आकाश पाताल का अन्तर आ गया। जहाँ कांग्रेस जनता को ब्रिटिश राज के विरूद्ध संघर्ष को आह्वान कर रही थी वहीं साम्यवादी जनता से आग्रह कर रहे थे कि ब्रिटिश सरकार से सहयोग करे। इसका कारण यही था कि सोवियत संघ और ब्रिटेन मिलकर नाजी जर्मनी के विरूद्ध महायुद्ध लड़ रहे थे। दिसम्बर 1945 में कांग्रेस महासमिति ने सभी साम्यवादियों को अपने दल से निष्कासित कर दिया। जब भारत का नया संविधान अस्तित्व में आया तो साम्यवादी दल ने इसे दासता का घोषणा–पत्र कहा।

संगठन – साम्यवादी दल के निम्न इकाई सेल है। इसमें दो या तीन सदस्य होते हैं। इसके बाद ग्राम, शहर, जिला एवं प्रान्तीय स्तर पर 'सम्मेलन' होते हैं। प्रत्येक स्तर के सम्मेलन की एक कार्यकारिणी समिति होती है। साम्यवादी दल की सर्वोच्च शक्ति अखिल भारतीय दल कांग्रेस में निहित होती है। इसके प्रतिनिधि राज्य सम्मेलनों द्वारा भेजे जाते हैं। अखिल भारतीय कांग्रेस एक राष्ट्रीय परिषद् का निर्माण करती है और यह परिषद् एक केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करता है। केन्द्रीय समिति में महासचिव तथा दल के मुख्य नेता होते हैं। दल का एक केन्द्रीय नियन्त्रण आयोग भी होता है। साम्यवादी दल का संगठन लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है।

भारतीय राजनीति में साम्यवादी दल – स्वाधीनता प्राप्ति के बाद साम्यवादी दल ने 14 से 17 फरवरी, 1948

को अपने 'कलकत्ता सम्मेलन में कलकत्ता थीसिस' के अनुसार 'स्वाधीनता' को सच्ची स्वाधीनता नहीं माना गया, नेहरू सरकार को पूंजीवादी हितों का रक्षक कहा गया और यह माना गया कि सरकार बड़े व्यवसायिक हितों का संरक्षण करने वाली है। साम्यवादी दल का यह विश्वास था कि सरकार आंग्ल अमरीकी चंगुल में फंसी हुई है, अतः दल ने सभी क्रान्तिकारी तत्वों को संगठित करके एक लोकतान्त्रिक गठबन्धन तैयार करने का निर्णय लिया। दल के महासचिव रणदिवे ने तो यहाँ तक कहा कि भारत में रूस की अक्तूबर क्रांति के समतुल्य 'अन्तिम क्रांति' प्रारम्भ की जा सकती है। मार्च 1947 में पश्चिमी बंगाल सरकार ने साम्यवादी दल को अवैध घोषित कर दिया। कई साम्यवादी नेताओं को देश के विभिन्न भागों में गिरफ्तार भी कर लिया गया। साम्यवादियों ने देश के विभिन्न भागों में हड़ताल बन्द भी आयोजित किये। तेलंगाना प्रदेश में तो साम्यवादियों ने आतंक का राज्य ही स्थापित कर दिया। साम्यवाद की गतिविधियों से तंग आ करके केन्द्रीय सरकार ने उन्हें 'निवारक विरोध अधिनियम' के अन्तर्गत गिरफ्तार भी कर लिया। प्रथम आम चुनाव में साम्यवादी दल ने लोकसभा के 27 स्थानों पर विजय प्राप्त की और राज्य विधानमण्डलों में उसे 181 स्थान प्राप्त हुए। लोकसभा में सबसे बड़ा विरोधी दल होने के कारण उसके नेता ए०के० गोपालन ने गैर कांग्रेसी दलों का संयुक्त गठबन्धन बनाने का प्रयास भी किया। दूसरे जन निर्वाचन में दल को लोकसभा में 29 स्थान प्राप्त हुए। केरल राज्य में दूसरे चुनाव में साम्यवादियों को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ और 5 अप्रैल, 1975 को उन्होंने अपना मन्त्रिमण्डल बनाया। विश्व के इतिहास में पहली बार चुनावों के माध्यम से साम्यवादियों को सत्ता में आने का यह पहला मौका मिला था।

साम्यवादी दल में कई कारणों से दरार पड़ने लगी। दिसम्बर 1953 की तीसरी कांग्रेस में साम्यवादी नेताओं के मतभेद खुले तौर से सामने आने लगे। सर्वप्रथम राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबन्धन के सवाल को लेकर नेताओं के बीच विवाद बढ़ा। अजय घोष, पी.सी. जोशी आदि का कहना था कि नेहरू सरकार प्रगतिशील नीतियों में विश्वास करती है, अतः उसके साथ सहयोग किया जा सकता है। दूसरी ओर भूपेश गुप्त, रमन मूर्ति इत्यादि नेहरू सरकार को पूंजीवाद परस्त मानते थे और उसका विरोध करना चाहते थे। साम्यवादी दल में मतभेद का दूसरा चरण खुश्चेव की निस्टालिनीकरण की नीति थी। 1962 के भारत चीन संघर्ष को लेकर भी गम्भीर मतभेद देखा जा सकता था। सन् 1964 के बाद तो साम्यवादी दल के दोनों गुटों के तनाव बहुत अधिक बढ़ा। फरवरी 1963 में डांगे द्वारा लिखे कुछ पत्रों को लेकर साम्यवादी दल में गम्भीर वाद विवाद छिड़ गया। दल का वामपन्थी गुट चाहता था कि डांगे अपने पद से त्यागपत्र दे दें, किन्तु डांगे उनकी बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे। ऐसी स्थिति में दल के कतिपय प्रमुख सदस्य जैसे सुन्दरैया, ज्योति बसु, ए.के. गोपालन, नम्बूद्रीप्रसाद, भूपेश गुप्त, प्रमोद दास गुप्ता इत्यादि दल से अलग हो गये। दोनों गुटों में समझौते के प्रयास भी किये गये, किन्तु वामपंथी गुट के लोगों ने गोपालन के नेतृत्व में 11 सदस्यों का एक नया गुट संगठित कर लिया। इस गुट को भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) कहा जाने लगा।

विभाजन के पश्चात् साम्यवादी दल वैचारिक दृष्टिकोण से सोवियत संघ के निकट रहा है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि दल ने सत्ताधारी कांग्रेस दल के साथ सहयोग करने की नीति प्रारम्भ कर दी। साम्यवादी दल ने कांग्रेस से सहयोग करने की नीति की शुरूआत मोहन कुमार मंगलम् की 'थीसिस' के आधार पर की। कुमार मंगलम् के अनुसार साम्यवादी कांग्रेस में घुस करके अन्ततोगत्वा सत्ता पर कब्जा कर सकते हैं। यह बात सर्वविदित है कि 1971 और 1972 के निर्वाचनों में साम्यवादी दल ने कांग्रेस के साथ न केवल सहयोगि किया अपितु चुनाव–गठबन्धन भी किया। चुनावों के पश्चात् साम्यवादी दल ने केरल और पश्चिमी बंगाल में कांग्रेस से मिल–जुलकर मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया। साम्यवादी दल को अपनी रणनीति का तात्कालिक लाभ भी प्राप्त हुआ है। अनेक भूतपूर्व साम्यवादियों को केन्द्र और राज्यों में मन्त्रिपदों पर भी नियुक्त किया गया।

## सिद्धान्त और कार्यक्रम

भारत का साम्यवादी दल कार्ल मार्क्स व लेनिन के विचारों से प्रेरणा ग्रहण करता है। साम्यवादियों का उद्देश्य पुरानी सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था को समाप्त करके एक ऐसे समाज का निर्माण करना है। जो मार्क्स व लेनिन के सिद्धान्तों पर आधारित हो। भारतीय साम्यवादी दल मजदूरों व किसानों के संरक्षण का दावा करता है। वह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहता है जिसमें असमानता, जातपात, शोषण व सामाजिक कुरीतियों के लिए कोई स्थान नहीं होगा। सभी नागरिकों को रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे तथा सामाजिक कुरीतियों के लिए कोई स्थान नहीं होगा। सभी नागरिकों को रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे तथा सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा की गारण्टी दी जायेगी। श्री डांगे के नेतृत्व में साम्यवादी दल ने चीनी कम्युनिस्ट की अपेक्षा रूसी कम्युनिज्म को चुना।

साम्यवादी दल ने हिंसात्मक कार्यवाहियों को त्याग दिया है। साम्यवादी दल कांग्रेस को प्रगतिशील दल मानता है और उसके साथ सहयोग करना चाहता है। वह संविधान में इस प्रकार का संशोधन चाहता है ताकि संविधान संशोधनों को किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सके। दल ने सुझाव दिया है कि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति संसद व विधानसभाओं द्वारा स्वीकृत नामों की सूची में से की जाए। संसद को यह अधिकार होना चाहिए कि वह साधारण बहुमत के आधार पर प्रस्ताव पारित करके सर्वोच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश को हटा सके। दल का सुझाव है कि एकाधिकारी पूंजीपतियों, राजाओं तथा अन्य धनी व्यक्तियों के सम्पत्ति के अधिकार को बहुत कड़ाई के साथ सीमित करने के लिए संविधान में संशोधन किया जाये। जहाँ तक हो सके जन साधारण की जिसमें छोटी सम्पत्ति रखने वाले सम्मिलित हैं। सम्पत्ति को पूंजीपतियों, जमींदारों, सूदखोरों आदि के हमलों से बचाया जाये। दल चाहता था कि मतदाताओं की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी जाये। लोकतन्त्र व विधानसभाओं के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को चालू किया जाये। राज्यपाल, विधानपरिषदों के पद भी समाप्त कर दिये जाये।

साम्यवादी दल चाहता है कि कृषि में जोत की वर्तमान सीमा को काफी कम कर दिया जाये, जोत–सीमा के लिए परिवार को इकाई माना जाये और सीमाबन्दी से छूटों को समाप्त कर दिया जाये। औद्योगिक क्षेत्र में दल की मांग है कि एकाधिकार पूजीपंतियों की कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये। विदेशी तेल कम्पनियों और विदेशी बैकों का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये। बेरोजगारी भत्ता दिया जाये। श्रमिकों, सरकारी कर्मचारियों आदि को आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम वेतन दिया जाये। दल चाहता है कि उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के विरूद्ध तथा सोवियत रूस व अन्य साम्यवादी देशों के साथ मैत्री पर आधारितश शान्ति व गुटनिरपेक्षता की नीति अपनायी जायें। रंगभेद के विरूद्ध और अधिक कार्यवाही की जाये ताकि भारत ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से अलग हो जाये। दल ने अपने 1971 के घोषणा पत्र में कहा कि संविधान में यह आवश्यक संशोधन कर न्यायपालिका को इस बात के लिए विवश किया जाना चाहिए कि वह कानूनों की व्याख्या निहित स्वार्थों के हित में नहीं वरन् देश में सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन लाने के लिए करे। साथ ही न्यायपालिका को संविधान की प्रस्तावना तथा निर्देशक सिद्धान्तों में मार्गदर्शन ग्रहण करना चाहिए।

साम्यवादी दल संवैधानिक तरीकों तथा लोकतन्त्र में विश्वास करता है। यह दल 'सर्वहारा वर्ग की तानाशाही', 'क्रांति की अनिवार्यता' को नहीं दोहराता है। 1971 में लोकसभा में इसके सदस्य 23 सदस्य निर्वाचित हुए। इसने कांग्रेस के साथ सहयोग और समर्थन की नीति अपनायी। इस दल का प्रभाव आन्ध्र प्रदेश, पश्चिमी बंगाल व केरल राज्यों में अधिक है।

1977 के लोकसभा के चुनावों के समय श्रीमती गांधी के विरूद्ध रोष का वातावरण बन चुका था। इसलिए कम्युनिस्ट पार्टी को भी कोई विशेष कामयाबी हासिल नहीं हुए। 1977 में गठित लोकसभा में साम्यवादी दल के केवल 7 सदस्य थे।

नवम्बर 1979 में श्री एस.के. डांगे ने पार्टी के चेयरमैन पद से और केन्द्रीय समिति से त्यागपत्र दे दिया। श्री डांगे का मत था कि वामपन्थी ताकतें श्रीमती गांधी के नेतृत्व में ही आगे बढ़ सकती है, परन्तु साम्यवादी दल के महासचिव राजेश्वर राव श्री डांगे की मान्यता (थीसिस) को सही नहीं समझते। उनके अनुसार आपातकाल में श्रीमती गांधी का समर्थन गलत था। 1980 में एस. ए. डांगे की पुत्री श्रीमती रोजा देश पाण्डे को पार्टी से निकाल दिया गया। उन्होंने और उनके साथियों ने मिलकर अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की।

1980 के लोकसभा चुनावों के लिए वामपन्थी मोर्चे का गठन किया गया था। कम्युनिस्ट पार्टी ने कुल मिलाकर 11 स्थानों पर विजय हासिल की। मई 1980 के विधानसभा चुनावों में कम्युनिस्ट पार्टी ने बिहार में अपने प्रभाव को कायम रखा। तमिलनाडु और पंजाब में उसने क्रमशः 10 व 9 सीटें प्राप्त की। 1981 में श्री डांगे को कम्युनिस्ट पार्टी से निकाल दिया गया। पार्टी से निकालने के कई कारण बताये गये, जैसे दल विरोधी गतिविधियों को प्रोत्साहन देना और श्रीमती रोजा देशपांडे द्वारा संस्थापित कम्युनिस्ट पार्टी के समारोह में भाग लेना।

कम्युनिस्ट पार्टी के अधिकांश नेता और सदस्य मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गये हैं, इसलिए उसका जनाधार (Mass Base) जब नहीं के बराबर है। कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं का कहना है कि यदि दोनों पार्टियों एक हो जायें तो राष्ट्र की राजनीतिक स्थिति पर उसका जबरदस्त असर पड़ेगा। मई 1982 में कम्युनिस्ट पार्टी में मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व में चुनाव लड़ा। पश्चिम बंगाल में वामपन्थी मोर्चे को भारी बहुमत मिला, पर केरल में उन्हें पराजय का सामना करना पड़ा।

दिसम्बर 1984 में लोकसभा चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल ने 66 स्थानों पर प्रत्याशी खड़े किये और 6 स्थानों पर उसके प्रत्याशी विजयी हुए। दल को 2.7 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। मार्च 1987 में कम्युनिस्ट पार्टी ने मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व में चुनाव लड़े। पश्चिमी बंगाल में वामपन्थी मोर्चे को भारी बहुमत मिला। उसने 294 स्थानों में से 251 पर सफलता प्राप्त की जिसमें 11 सीटें कम्युनिस्ट पार्टी की थी। केरल में मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व में वामपंथी मोर्चे की सरकार बनी। कम्युनिस्ट पार्टी उसे सरकार में शामिल हुई।

नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में साम्यवादी पार्टी ने 49 सीटों पर चुनाव लड़ा अ और उसे 12 सीटें हासिल हुई। 1991 के 10वीं लोकसभा चुनावों में पार्टी को 14 सीटें प्राप्त हुई।

ग्यारहवीं लोकसभा के चुनाव (1996) और भारतीय साम्यवादी दल – भारतीय साम्यवादी दल ने 1991–95 के वर्षों में भारत सरकार की उदारवादी आर्थिक नीतियों का प्रबल विरोध किया और चुनाव के समय में जारी घोषणा–पत्र में कहा गया कि पार्टी निर्बाध उदारीकरण की नीति का त्याग कर देगी, सार्वजनिक क्षेत्र का निजीकरण रोक देगी और जीवन के लिए आवश्यक 14 वस्तुएँ सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत लगभग 50 प्रतिशत कम मूल्य पर उपलब्ध कराएगी। चुनाव सुधार, भ्रष्टाचार निवारण, लोकपाल की स्थापना, अल्पसंख्यकों के जीवन तथा अधिकारों की रक्षा, भूमि सुधार कानूनों की कमियों को दूर कर उन्हें लागू करने तथा केन्द्र में संसाधनों के अति केन्द्रीकरण को रोकने आदि की बातें कही गई। उद्योगों के प्रबन्ध में मजदूरों की भागीदारी सुनिश्चित करने और भूमि, सम्पत्ति और जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं को पुरुषों के बराबर हक दिलाने की बात भी कही गई है।

1996 में लोकसभा चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल ने 43 सीटों पर चुनाव लड़ा और 12 सीटों (2.0 प्रतिशत

मत) पर उसे सफलता मिली। साम्यवादी दल संयुक्त मोर्चे में शामिल हुआ और श्री इन्द्रजीत गुप्त को गृहमन्त्री तथा श्री चतुरानन मिश्र को कृषि मन्त्री बनाया गया।

12वीं लोकसभा के चुनाव (फरवरी 1998) और भारतीय साम्यवादी दल – फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल को 9 सीटें प्राप्त हुई। इनमें से 3 सीटें पश्चिम बंगाल तथा 2.2 सीटें केरल और आन्ध्र प्रदेश से उसे मिली।

## साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) (Communist Party Marxist)

सन् 1964 में साम्यवादी दल दो भागों में विभक्त हो गया तथा एक नये दल भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) का जन्म हुआ। इसके नेता प्रमोद दास गुप्ता, ज्योति बसु, ए.के. गोपालन तथा पी. राममूर्ति है। 1967 ई. के चुनावों में इस दल को भारतीय साम्यवादी दल के मुकाबले में अधिक सफलता मिली। इनको लोकसभा में 19 व राज्य विधानसभाओं में 126 स्थान प्राप्त हुए। केरल में नम्बूद्रीप्रसाद के नेतृत्व में संयुक्त सरकार का निर्माण हुआ। पश्चिमी बंगाल में अजय मुखर्जी की संयुक्त सरकार में मार्क्सवादी साम्यवादी दल की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सन् 1971 के चुनावों में इसकी शक्ति में वृद्धि हुई और लोकसभा में इसके 25 सदस्य हो गये।

संगठन – मार्क्सवादी साम्यवादी दल का संगठन साम्यवादी दल की भांति ही सीढ़ीनुमा है। निम्न स्तर पर सैल होते हैं और उनके ऊपर ग्राम, शहर, तालुका, जिला एवं राज्य समितियाँ होती है। सभी समितियों की एक–एक कार्यकारिणी समिति होती है। केन्द्रीय समिति दल की सर्वोच्च संस्था है। केन्द्रीय समिति एक पोलिट ब्यूरो का चुनाव करती है। इसमें दल के प्रमुख नेता सम्मिलित है।

## मार्क्सवादी दल का सामाजिक आधार व राजनीतिक उपलब्धि

किसी समय कम्युनिस्ट पार्टी संसद में प्रमुख विपक्षी दल की भूमिका निभा रही थी और कई राज्यों की विधानसभाओं में भी उसका अच्छा प्रभाव था। बाद में उनका एक बड़ा हिस्सा टूटकर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी बन गया। पहले जिन राज्यों में कम्यूनिस्ट पार्टी प्रभावी थी, वहां अब मार्क्सवादियों की प्रधानता देखने को मिलती है। जैसे–जैसे भारतीय साम्यवादी पार्टी क्षीण होती रही, वैसे–वैसे मार्क्सवादी आगे बढ़ते गये। अब केवल बिहार ही एक ऐसा राज्य है जहाँ मार्क्सवादी के मुकाबले कम्युनिस्टों का संगठन ज्यादा मजबूत है।

1971 के मध्यावधि चुनावों में मार्क्सवादी दल को लोकसभा में 25 सीटें मिली। पश्चिमी बंगाल इस दल का विशेष गढ़ है, परन्तु आन्ध्र प्रदेश, केरल व त्रिपुरा में इस दल का संगठन काफी मजबूत है। छठी लोकसभा में इस दल के 22 सदस्य थे। 1980 के लोकसभा चुनाव में मार्क्सवादी दल के 36 सदस्य चुनकर आये, जिनमें से 27 पश्चिम बंगाल में चुने गये। मई 1980 के विधानसभाई चुनावों में पार्टी को कोई विशेष सफलता नहीं मिली। तमिलनाडु में मार्क्सवादी पार्टी ने 11 सीटें जीती और पंजा में उसे 5 स्थानों पर विजय मिली। मई 1982 के चुनावों के वामपन्थी मोर्चे की पश्चिमी बंगाल में उल्लेखनीय सफलता मिली। वहाँ मोर्चे को तीन–चौथाई बहुमत मिला। मोर्चे के प्रमुख घटक मार्क्सवादी पार्टी को इतनी सीटें मिली कि विधानसभा से उसे अकेले बहुमत प्राप्त हो गया। केरल विधानसभा से वामपन्थी मोर्चे को प्राप्त 63 सीटों में से मार्क्सवादी 26 सीटें ले पायी। जनवरी 1983 में त्रिपुरा में फिर से वाम मोर्चे की सरकार बनी, जिसमें सबसे ज्यादा मन्त्री मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के थे।

## विचारधारा, नीतियाँ तथा कार्यक्रम

मार्क्सवादी, साम्यवादी पार्टी डांगे तथा सी.पी.आई. की ऐसे संशोधनवादियों के रूप में निन्दा करती है जो अपनी वर्ग

सहयोग की अवसरवादी धारणा का अनुसरण करना चाहते हैं। यह सी.वी.आई. पर आरोप लगाती है कि उसने श्रीमती गांधी के अधीन कांग्रेस दुर्जूआ–जमींदार सरकार के साथ गठजोड़ किया जिसने आपातकालीन स्थिति की घोषणा की और सभी विरोधी नेताओं को जेलों में डाल दिया।

इस दल के नेता 'किसानों और मजदूरों की तानाशाही' कायम करना चाहते हैं। यद्यपि उन्होंने चुनाव की राजनीति का परित्याग करना उचित नहीं समझा अर्थात् वे चुनावों में भाग लेते हैं, परन्तु उनका असली झुकाव लोकतन्त्रीय व वैधानिक पद्धतियों की ओर न होकर प्रदर्शन, घेराव का मोर्चो की ओर है।

मार्क्सवादी पार्टी काफी समय तक जनवादी चीन की ओर झुकी रही, परन्तु अफगानिस्तान में रूसी कार्यवाही का संगठन करके उसने अपने को रूस के काफी निकट कर दिया। मार्क्सवादी पार्टी पर रूस की ओर से यह दबाव डाला जाता रहा कि वह कांग्रेस (आई) के प्रति नरम रूख अपनाये पर मार्क्सवादी पार्टी इसके लिए तैयार नहीं थी। पार्टी में विजयवाड़ा सम्मेलन (1982) के बाद महासचिव नम्बुद्रीप्रसाद ने कहा था, ''रूस ने पार्टी का जनसमर्थन देखना शुरू कर दिया। हमारी पार्टी सोवियत रूस को मान्यता प्राप्त करने के लिए कांग्रेस (आई) के प्रति नरमी बरतने को तैयार नहीं है। मार्क्सवादी पार्टी बिना सोवियत रूस की मान्यता के 18 वर्षों तक चलती रही है।''

यदि 1977–1980 व 1989 के चुनावों के लिए जारी किये गये घोषणा–पत्र को देखें तो इस दल के कार्यक्रम का निम्नलिखित रूप हमारे सामने आता है –

**संवैधानिक क्षेत्र में**– मार्क्सवादी दल मजदूर वर्ग के नेतृत्व में जन लोकतन्त्र स्थापित करना चाहता है। यह लोगों की प्रभुसत्ता के आधार पर एक नया विधान चाहता है, जिसमें समानुपातिक प्रतिनिधित्व की अनुमति देगा और राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों के लिए कोई स्थान नहीं होगा। इसके अनुसार राज्यपाल के पद और केन्द्रीय व राज्य विधानमण्डलों में दूसरे सदनों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यह राज्यों की और अधिक शक्तियाँ प्रदान करने, सभी नागरिकों को समान अधिकार, सभी भाषाओं के लिए समानता और राज्य सरकारों को भारतीय प्रशासनिक तथा भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखने का समर्थक है। इसके अनुसार काम करने के अधिकार को मूल अधिकारों की सूची में शामिल किया जाना चाहिए और बेरोजगारी भत्ते की व्यवस्था की जानी चाहिए।

**राजनीतिक क्षेत्र में**– मार्क्सवादी दल एक नयी शासन प्रणाली लाना चाहता है जिसे 'जन लोकतन्त्र' कहा जाता है। इसके अनुसार एक सर्वहारा राज्य की स्थापना की जानी चाहिए, जिसमें शोषण के लिए कोई स्थान न हो। यह समाजवाद के लिए संसदीय मार्ग को अस्वीकार करता है। मार्क्सवादी दल न्यायालपालिका की प्रतिबद्धता पर बल देता है। अभिप्राय यह है कि न्यायपालिका जनता की इच्छा के अनुरूप कार्य करे। सामाजिक सुधार लाने के लिए जो कानून बनाये जायें उन्हें अदालतों में चुनौती दी जा सके। मार्क्सवादी दल की मान्यता है कि राज्यों की शक्तिशाली बनाया जाये। उनका कहना है कि समवर्ती सूची में शामिल विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केवल राज्य विधानमण्डल को ही प्राप्त हो।

**आर्थिक क्षेत्र में** –(1) चीनी, कपड़ा, जूट सीमेण्ट व अन्य महत्वपूर्ण उद्योग–धन्धों को तुरन्त राष्ट्रीयकरण किया जाए तथा विदेशों में भारतीयों की जो पूंजी है, उस पर सरकार का अधिकार स्थापित किया जाये, (2) कारखानों व अन्य क्षेत्रों में कर्मचारियों की 'प्रबन्ध कार्यों' में भाग लेने का अधिकार दिया जाये, छोटे किसानों को ऋण प्राप्त करने की सुविधाएँ मिलें और गरीबों से कर न लेकर करों का बोझ अमीरों के ऊपर डाला जाये, (3) जमींदारी प्रथा का पूर्ण खात्मा किया जाए तथा भूमिहीनों एवं समाज के कमजोर वर्गों के बीच तेजी से भूमि बांटने का काम किया जाये। किसानों, खेतिहर मजदूरों एवं गांवों की गरीब जनता पर जो ऋण हैं, वे तत्काल रद्द किये जायें। उन्हें मकान बनाने

के लिए निःशुल्क जमीनें दी जायें। गरीब किसानों को किसी भी अवस्था में उसके खेतों से बेदखल न किया जाये।

**सामाजिक क्षेत्र में** –मार्क्सवादियों ने निम्नलिखित कार्यक्रम पर बल दिया है : (1) हरिजनों, जनजातियों व पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी नौकरियों व विद्यालयों में स्थान आरक्षित किये जायेंगे। जिन हरिजन भाईयों ने बौद्ध धर्म अपना लिया है, उन्हें वे सुविधाएँ बराबर मिलती रहनी चाहिएं, (2) मुसलमानों और उर्दू भाषा के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा, (3) अहिन्दी भाषा–भाषियों पर हिन्दी नहीं लादी जाएगी।

**विदेश नीति के क्षेत्र में** –मार्क्सवादियों का कहना है कि भारत का हित इसी बात में है कि वह पूंजीवादी ताकतों का विरोध करें तथा समाजवादी देशों के साथ अपने सम्बन्ध मजबूत बनायें। समाजवादी वियतनाम और कंपूचिया की हैंग सैमरिन सरकार के साथ उसे विशेष हमदर्दी थी। पार्टी तीसरी दुनिया के उन देशों का समर्थन करती है जो अपन राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। पार्टी की यह मांग थी कि भारत सोवियत मैत्री सन्धि पर पूरी तरह अमल किया जाये और चीन के साथ सम्बन्ध सामान्य बनाये जायें।

पश्चिमी बंगाल के देहाती क्षेत्रों में भूमि सुधार कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू करने में पार्टी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मार्क्सवादी दल वहाँ सभी जिलों में अपनी जड़ें जमाने में सफल हुआ है।

दिसम्बर 1984 के लोकसभा चुनावों में मार्क्सवादी पार्टी ने 64 स्थानों पर प्रत्याशी खड़े किये और उसके 22 प्रत्याशी विजयी हुए। उसे 5.7 प्रतिशत मत मिले। मई 1987 में पश्चिम बंगाल में वामपन्थी मोर्चे ने लगातार तीसरी बार शानदार विजय हासिल की। इस विजय का मुख्य श्रेय मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को जाता है जिसे 294 विधानसभाई स्थानों में से 187 स्थान मिले। केरल में भी वामपन्थी मोर्चे की सरकार बनी, जिसका प्रमुख घटक मार्क्सवादी दल हैं त्रिपुरा में आयोजित विधानसभा चुनावों (अप्रैल, 1993) में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने अकेले 60 में से 36 सीटें जीतकर पूर्ण बहुमत हासिल कर लिया।

नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में माकपा ने 64 स्थानों पर अपने प्रत्याशी खड़े किये और उसे 33 सीटें प्राप्त हुई। दसवीं लोकसभा चुनावों (1991) में पार्टी को 35 सीटें प्राप्त हुई।

ग्याहरवीं लोकसभा के चुनाव (1996) और मार्क्सवादी दल का चुनाव घोषण पत्र – मार्क्सवादी दल ने अपने 46 सूत्री घोषणा पत्र में मतदाताओं से वायदा किया था कि वह सत्ता में आने पर नरसिंह राव सरकार की 'निर्वाध उदारीकरण' की नीति को त्याग देगी, सार्वजनिक क्षेत्र का निजीकरण रोक देगी, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत जीवन के लिए आवश्यक 14 वस्तुएँ 50 प्रतिशत कम कीमत पर उपलब्ध कराएंगी, पांचवे वेतन आयोग की सिफारिशों को क्रियान्वित करेगी, संसद तथा विधानमण्डलों में महिलाओं के लिए एक–तिहाई स्थान आरक्षित कराएगी, सभी गांवों में पेयजल उपलब्ध कराएगी, राष्ट्रीय बजट का 10 प्रतिशत और राज्य के बजट का 30 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करेगी, रोजगार तथा आवास का मूल अधिकार का दर्जा देगी और धर्मान्तरण कर ईसाई बने दलितों को अनुसूचित जातियों को मिलने वाली सुविधाएँ प्रदान करेगी।

इसके साथ ही विदेशी निवेश को प्राथमिकता नहीं देने, सार्वजनिक क्षेत्र को स्वायत्तता देने, प्रबन्ध में मजदूरों की भागीदारी सुनिश्चित करने, सैन्य कर्मचारियों के एक पद के लिए एक वेतन देने, भूमि सुधार कानूनों की कमियों को दूर कर उन्हें सख्ती के साथ लागू करने, खेतिहर मजदूरों के लिए केन्द्रीय कानून बनाने, सम्पत्ति तथा भूमि में महिलाओं को पुरुषों के बराबर का हक दिलाने, अल्पसंख्यकों को जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा देने, चुनाव सुधार के लिए व्यापक विधेयक लाने, लोकपाल विधेयक लाने उसके दायरे में प्रधानमन्त्री को लाने, केन्द्र में संशोधनों का अतिकेन्द्रीकरण रोकने, राजनीति का अपराधीकरण रोकने, आम जनता को शीघ्र तथा सस्ता न्याय दिलाने, राज्यों को

अधिक अधिकार देने और पंचायतों को अधिकार सम्पन्न बनाने का भी वायदा किया है।

1996 के लोकसभा चुनावों में मार्क्सवादी साम्यवादी दल ने 75 सीटों पर अपने प्रत्याशी खड़े किये और 32 सीटों (6.1 प्रतिशत मत) पर उसके प्रत्याशी विजयी हुए। मार्क्सवादी दल ने केन्द्र में संयुक्त मोर्चे की सरकार को बाहर से समर्थन दिया।

12वीं लोकसभा चुनाव (चुनाव 1998) और मार्क्सवादी दल – फरवरी 1998 में सम्पन्न लोकसभा चुनावों में मार्क्सवादी साम्यवादी दल को 32 सीटें प्राप्त हुई और दल ने कांग्रेस के नेतृत्व में गैर–भाजपा सरकार को बाहर से समर्थन देने के लिए तैयार हो गया। सीताराम येचुरी और प्रकाश कारत सरीखे पदाधिकारी कांग्रेस को भाजपा से कम खतरनाक दुश्मन बताने लगे।

13वीं लोकसभा के चुनाव (सितम्बर–अक्तूबर 1999) और साम्यवादी दल – बार–बार खण्डित जनादेश के चलते 1996 से ही मार्क्सवादी साम्यवादी पार्टी की अगुवाई में राष्ट्रीय राजनीति के मंच पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता आ रहा वाम मोर्चो 1999 में अपनी जोड़–तोड़ की क्षमता खो बैठा। 11वीं लोकसभा (1996–98) में वह सत्तारूढ़ संयुक्त मोर्चे को पीछे से चलाने वाला सशस्त चालक था।

13वीं लोकसभा के चुनावों में मार्क्सवादी साम्प्रदायी दल ने 72 प्रत्याशी खड़े किए और उसके 33 प्रत्याशी लोकसभा में पहुंचे। दल को 5.38 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। मई 2001 में सम्पन्न पं० बंगाल विधानसभा चुनावों में मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व में वाम मोर्चे को 294 में से 199 सीटों पर जीत हासिल हुई। अकेली मार्क्सवादी साम्यवादी पार्टी को 143 सीटें प्राप्त हुई।

माकपा में 1977 में मोरारजी देसाई की सरकार को, 1989 में वी.पी. सिंह की सरकार को तथा 1996–97 में देवगौड़ा एवं गुजराल सरकारों को बाहर से समर्थन दिया था। देश में सबसे लम्बे समय तक मुख्यमन्त्री रहने का रिकार्ड बनाने वाले नेता ज्योति बसु माकपा के ख्याति प्राप्त दिग्गज हैं।

### 2.4.7 भारत में क्षेत्रीय और राज्य स्तर की पार्टियाँ (Regional and State Parties in India)

महाराष्ट्र में शिव सेना, कश्मीर में नेशनल कांफ्रेंस, आन्ध्र प्रदेश में तेलगूदेशम, तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (अन्नाद्रमुक) तथा पंजाब में अकाली दल के प्रभाव के बाद यह सवाल उठना अस्वभावित नहीं है कि क्या भारत में राज्य स्तरीय पार्टियाँ ही पनपेगी? राज्य स्तरीय पार्टियाँ नई नहीं है। देश में बंगला कांग्रेस, केरल कांग्रेस, उत्कल कांग्रेस जैसी कांग्रेस नामधारी क्षेत्रीय दलों तथा विशाल हरियाणा पार्टी, गणतन्त्रपरिषद्, शेतकारी कामगार पार्टी, सम्पूर्ण महाराष्ट्र एकीकरण, महा गुजरात जनता परिषद्, जैसी राज्य पार्टियों का भी उतार–चढ़ाव देखा है। ऐतिहासिक परिस्थितियों में उनका विकास हुआ और अन्य परिस्थितियों में वे दूसरों से मिल गयी या समाप्त हो गयी। सन् 1967 में पंजाब से लेकर पश्चिम बंगाल तक और बाद में मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा में जो सरकार बनीं, उन्हें संयुक्त विधायक दल का नाम दिया गया, परन्तु उन दलों की बड़ी शक्ति राज्य स्तरीयय पार्टियाँ ही थी। भले ही वह राव वीरेन्द्र सिंह की विशाल हरियाणा पार्टी हो, चौधरी चरणसिंह का भारतीय क्रान्ति दल हो, उड़ीसा के राजाओं की गणतन्त्र परिषद् या अजय मुखर्जी की बंगला कांग्रेस हो। दक्षिण में अन्नादुरै का द्रविड़ मुनेत्र कड़गम शक्तिशाली बनी।

11वीं लोकसभा में राज्य स्तरीय (क्षेत्रीय) दलों का वर्चस्व स्थापित हुआ और यूनाइटेड फ्रण्ट के भागीदार के रूप में वे केन्द्र की मिली जुली सरकार के आधार स्तम्भ बने। 13 पार्टी के यूनाईटेड फ्रण्ट में तेलगूदेशम्, द्रमुक, नेशनल कान्फ्रेन्स, तमिल मनीला कांग्रेस, समाजवादी पार्टी और असम गण परिषद् को भी केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व मिला। आज उन्हें 'राष्ट्रीय हितों का पोषण करने वाली क्षेत्रीय पार्टियाँ' कहा जाने लगा है।

क्षेत्रीय दलों का उद्भव जन आन्दोलन से हुआ। द्रमुक अगर द्रविड़ कडगम की ब्राह्मण विरोधी राजनीति की उपज है, तो तेलगूदेशम का जन्म कांग्रेसी सरकारों द्वारा तेलगु 'स्वाभिमान' को ठेस पहुंचाने के कारण हुआ और 'विदेशियों' के खिलाफ अन्य जातियतावादी छाप आन्दोलन के कारण असम गण परिषद् अस्तित्व में आई।

'राज्य स्तरीय' दलों की 'क्षेत्रीय दल' सम्बोधित करने की हमारी आदत रही है। असल में असम गण परिषद् (असम), नेशनल कांफ्रेन्स (जम्मू–कश्मीर), डी.एम.के. (तमिलनाडु), अकाली दल (पंजाब), शिवसेना (महाराष्ट्र), सिक्कम संग्राम परिषद् (सिक्किम), आदि सभी स्तरीय दल है। ये अलग–अलग राज्यों में प्रभावशाली है, न कि किसी 'क्षेत्र' (Region) विशेष में।

## क्षेत्रीय और राज्य स्तरीय दलों की विशेषताएँ (Salient Features of Regional and State Parties)

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय और राज्य स्तरीय दलों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। इन दलों की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं :–

1. भारतीय राजनीति में राज्य दलों का वर्चस्व सन् 1967 के चतुर्थ आम चुनावों के बाद बढ़ने लगा।
2. भारत के क्षेत्रीय दल आमतौर से राज्य स्तरीय दल ही है।
3. इन राज्य स्तरीय दलों की प्रमुख मांग राज्य स्वायत्तता है।
4. इन राज्य स्तरीय दलों की प्रमुख प्रतिस्पर्धा कांग्रेस दल से रही है।
5. राज्य स्तरीय दलों की संकुचित अपील और आधार होते हैं, जैसे उपसंस्कृति, जातीयता और धर्म के तत्व आदि।
6. क्षेत्रवाद का उदय केन्द्र के खिलाफ विद्रोह से होता है।
7. क्षेत्रवाद की वस्तुतः सत्ता हासिल करने का वैसा ही शॉर्टकट है जैसे शॉर्टकट राष्ट्रीय राजनीतिक करने वाले दल अपनाते है।

## भारत में प्रमुख राज्य स्तरीय दल (Major State Parties in India)

भारत में प्रमुख रूप से तीन प्रकार के राज्य स्तरीय दल है। पहले प्रकार के राज्य स्तरीय दल वे हैं जो वास्तव में जाति, धर्म, क्षेत्र अथवा सामुदायिक हितों का प्रतिनिधित्व करते है और उन पर आधारित है। इसके प्रमुख उदाहरण द्रविड़ मुन्ड़ें कड़गम, या अन्नाद्रमुक (तमिलनाडु), अकाली दल (पंजाब), नेशनल कांफ्रेन्स (जम्मू–कश्मीर), शिव सेना (महाराष्ट्र), झारखण्ड पार्टी (बिहार) तथा उत्तर पूर्व में कुछ आदिवासी संगठन जैसे नागालैण्ड नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी, मिजो नेशनल फ्रण्ट, आदि है। दूसरे प्रकार के राज्य दल वे हैं जो किसी समस्या विशेष को लेकर अथवा सदस्यों की क्षुब्धता के कारण राष्ट्रीय दलों विशेष रूप से कांग्रेस से अलग होकर बने हैं। इनमें से अधिकतर दल केवल कुछ समय के लिए राष्ट्रीय रहे। कुछ ने स्वयं को राष्ट्रीय अकाली दल सिक्खों की मुख्य राजनीति व सामाजिक संस्था है। अकाली दल राज्य स्तरीय दल है क्योंकि यह पंजाब तक ही सीमित है। गुरुद्वारों (सिक्ख मन्दिरों) को पम्परानिष्ठ सिक्ख समुदाय के अधिकार क्षेत्र में लाने के लिए एक सुधार समूह का गठन किया गया। सन् 1925 में अकाली प्रत्यक्ष कार्यवाही के द्वारा गुरूद्वारों को वयस्क मताधिकार द्वारा सिक्ख समुदाय में से चुनी हुई एक समिति के अधिकार क्षेत्र में लाने में सफल हुए। समितियों के सौ से अधिक गुरूद्वारों पर नियन्त्रण तथा उनकी दान सम्पत्ति ने पंजाब में अकाली दल की स्थिति का प्रयोग शक्तिशाली बना दिया। धार्मिक दृष्टिकोण से यह ''पन्थ की सुरक्षा'' (सिक्ख धार्मिक दल

या समुदाय) के लिए बना है। राजनीतिक दृष्टि से अपने संविधान के अनुसार यह एक ऐसे "वातावरण के निर्माण के लिए बचाया गया जिसमें सिक्ख राष्ट्रीय अभिव्यक्ति को पूरी सन्तुष्टि प्राप्त हो सके।" इनके राजनीतिक उद्देश्यों ने पंजाबी सूबे या पंजाबी भाषायी राज्य की मांग का मार्ग प्रशस्त किया।

जब पंजाब द्विभाषी राज्य था तब अकाली दल ने सरकार के साथ सन्धि घोषित कर दी तथा 1957 के चुनावों के समय कांग्रेस के साथ मिल गये। फिर भी 1960 में पंजाबी सूबे के समर्थन में प्रदर्शन बढ़ गये। लेकिन इसके फलस्वरूप अकालियों के बीच गुटबन्दी का जन्म हुआ। लगभग तीस वर्षों तक मास्टर तारा सिंह अकाली दल के एक प्रभावशाली नेता रहे। फिर भी 1962 में उनके प्रमुख अनुयायी सन्त फतेहसिंह ने अकाली दल की एक प्रतिद्वन्दी शाखा की स्थापना की जो शीघ्र मास्टर तारासिंह के दल पर पूरी तरह छा गयी। 1966 में अलग पंजाब राज्य की रचना करके पंजाबी सूबे के लिए अकाली दल की चिरकालिक तथा आग्रहपूर्ण मांग मंजूर कर ली। 1998 में मास्टर तारासिंह की मृत्यु हो गई तथा अकाली दल के दोनों पक्ष फिर से एक हो गये। 1969 के मध्यावधि चुनाव में विधानसभा में दोबारा गठित दल के कांग्रेस से अधिक सदस्य चुने गये। जनसंघ के साथ एक आश्चर्यजनक मेल कर अकाली दल ने पंजाब में सरकार बनायी। 1977 के चुनावों में अकाली दल ने जनता सरकार का समर्थन किया। जुलाई 1979 में जनता पार्टी सरकार पर संकट के समय अकाली दल ने उसका साथ छोड़ दिया। जनवरी 1980 में लोकसभा चुनाव में दल को भारी असफलता की स्थिति का सामना करना पड़ा। मई 1980 के विधानसभा चुनाव में इस दल ने भारतीय साम्यवादी दल और मार्क्सवादी दल के साथ समझौते के आधार पर लड़े और दल ने पंजाब के ग्रामीण अंचलों में अपनी लोकप्रियता का परिचय दिया। चुनाव परिणामों से यह स्पष्ट है कि पंजाब के कांग्रेस (आई) को चुनौती देने की क्षमता रखता है।

पहले चुनाव से ही अकाली दल पंजाब में कांग्रेस के पश्चात् दूसरे सबसे बड़े दल के रूप में सफल रहा है। वास्तव में अकाली दल और तीसरे नम्बर के दल के बीच का अन्तर कांग्रेस और अकाली दल के बीच के अन्तर से कहीं अधिक रहा। सन् 1952 में अकाली दल को वैध मतों का 24 प्रतिशत प्राप्त हुआ। सन् 1957 के चुनाव से पहले अकाली दल कांग्रेस में सम्मिलित हो गया और इसने एक अलग राजनीतिक दल के रूप में चुनाव नहीं लड़ा। सन् 1962 में दल को 20.7 प्रतिशत, 1967 में 24.7 प्रतिशत और 1969 में 19.5 प्रतिशत मत मिलें। सन् 1972 में अकाली दल को 27.7 प्रतिशत और 1977 में 31.4 प्रतिशत मत प्राप्त हुए।

ऊपर वर्णित चुनाव सफलताओं के विश्लेषण से अकाली समर्थन के बारे में कुछ विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। पहली बात तो यह है कि पंजाब में इस दल का निश्चित आधार है जो दलीय व्यवस्था में उथल–पुथल के बावजूद इस दल को समर्थन देता है। अध्ययनों से पता चलता है कि यह आधार मुख्य रूप से ग्रामीण सिक्ख कृषक वर्ग का है। अकाली दल इस वर्ग का आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक सभी क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी विशेषता यह है कि सदैव दूसरे नम्बर पर दल रहने के बावजूद अकाली दल की चुनाव जीतने की क्षमता सीमित है। सन् 1977 के चुनाव को छोड़कर इस दल का मत प्रतिशत कभी भी 30 प्रतिशत से ऊपर नहीं गया। इसका कारण इसकी केवल एक ही धार्मिक सम्प्रदाय से अपील और आर्थिक कार्यक्रम में वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व है।

जून 1980 के चुनावों में पराजय के बाद अकाली नेताओं को निराशा ने घेर लिया। अकाली दल कई धड़ों में बंट गया। मुख्य धड़े का नेतृत्व सन्त हरचन्द सिंह लोंगोवाल और पंजाब के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री प्रकाश सिंह बादल कर रहे थे। कई मुद्दों को लेकर उन्होंने पंजाब की कांग्रेस (आई) सरकार और भारत सरकार के विरूद्ध आन्दोलन छेड़ दिया। अकाली दल की मुख्य मांगे रही हैं :– (1) हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और राजस्थान के पंजाबी भाषी इलाके पंजाब में शामिल किये जायें। (2) चण्डीगढ़ को अकेले पंजाब की राजधानी स्वीकृत किया जाये। (3) भाखड़ नंगल

जैसे जल विद्युत केन्द्र पंजाब के नियन्त्रण में रहें (4) पंजाब में भारी उद्योगों की स्थापना की जाये, (5) गुरूद्वारों की प्रबन्ध समितियों व सिक्खों के अन्य धार्मिक मामलों में सरकार हस्तक्षेप न करे। इन मागों को लेकर अकाली दल ने न केवल धरने दिये और प्रदर्शन किया, बल्कि 'रास्ता रोको' और 'रेल रोको' जैसे आन्दोलन भी चलाये। धीरे–धीरे अकाली आन्दोलन एक खतरनाक मोड़ पर पहुंच गया। सन्त लोंगोवाल आन्दोलन शान्तिपूर्ण ढंग से चलाना चाहते थे, पर अकाली दल के भीतर उन लोगों की संख्या बढ़ी जो 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न सिख राज्य' का समर्थन करते थे। पंजाब के उग्रवादियों की बागडोर सन्त जरनेल सिंह भिण्डरावाला के हाथों में आ गई। कई पुलिस अधिकारी, सरकार कर्मचारी और निर्दोष व निहत्थे लोग उग्रवादियों की हिंसा का निशाना बने। फलस्वरूप जून 1984 में पंजाब में फौजी कार्यवाही की गई। स्वर्ण मन्दिर में सेना के प्रवेश और भिण्डरेवाले के अन्त के बाद पंजाब की समस्या के राजनीतिक समाधान की जरूरत थी। 24 जुलाई 1985 को अकाली दल और केन्द्र सरकार के बीच एक समझौता हुआ। समझौते के अन्तर्गत चण्ड़ीगढ़ शहर पंजाब को और उसके बदले में पंजाब के हिन्दी भाषी इलाके हरियाणा को दिये जाने हैं। श्रीमती गांधी की हत्या के बाद नवम्बर 1984 में हुए दंगों की जांच के लिए एक आयोग की स्थापना की गई तथा अकालियों का आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव सरकारिया आयोग को विचार के लिए सौंप दिया गया।

अकाली दल के चुनाव घोषणा–पत्र में दावा किया गया है कि अकाली दल आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक न्याय के आधार पर खड़ा राजनीतिक दल है, जिसका उद्देश्य अधिनायकवाद का विरोध और व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा कराना है। अकाली दल संविधान के संघीय स्वरूप, राज्यों की स्वायतता और अल्पसंख्यकों के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, भाषायी हितों की रक्षा के मुद्दों पर विशेष बल देता है। यह दल पंजाब और अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों में गुरूमुखी भाषा और लिपि के अधिकारिक प्रयोग का विशेष समर्थक है।

अकाली दल प्रमुखतया पंजाब के कृषकों का राजनीतिक दल है। अपने आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत इसके द्वारा भूमि सुधार कानूनों की क्रियान्विति, कृषि के आधुनिकीकरण, कृषकों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलवाने, उर्वरकों के दाम घटवाने और ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के विकास की बात कही गयी है। सन् 1962 के चुनाव में जब अकाली दल को ग्रामीण कृषक वर्ग का अधिक समर्थन प्राप्त हुआ है। दल की नीतियों में तदानुसार परिवर्तन देखने को मिलते हैं। अब अकाली दल तथाकथित अनावश्यक भूमि सुधारों का विरोध करता है और शहरी सम्पत्ति की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के लिए तत्पर हैं। इसी प्रकार उचित दाम पर अनाज की बिक्री के स्थान पर आज इसकी मांग किसानों को उचित न्यूनतम कीमत प्राप्त करवाने की है। अकाली दल 10 एकड़ तक की भूमि पर राजस्व की छूट, सिंचाई की अधिक सुविधाएँ, गांव में बिजली, सस्त दामों पर खाद, कृषकों को बैंकों और अन्य संस्थाओं से ऋण की सुविधाओं, आदि के लिए विशेष प्रयत्नशील है। अब उसकी दूसरी रूचि पंजाब के औद्योगिकीरण भी है क्योंकि अनेक बड़े किसानों के पास खेतों से कमाया व्यापक धन उद्योगों में लगाने के लिए उपलब्ध है। पंजाब के रहने वाले हिन्दू–हरिजन और एक सीमा तक शहरी सिक्ख अकाली दल को समर्थन नहीं देते। इसी का दूसरा पहलू यह है कि अकाली दल अपनी संकीर्णता के बावजूद अकेले विधानसभा में बहुमत नहीं प्राप्त कर सकता।

सितम्बर 1985 के विधानसभा एवं लोकसभा चुनावों में अकाली दल को पंजाब में ऐतिहासिक सफलता प्राप्त हुई। विधानसभा के 115 स्थानों में से 73 तथा लोकसभा के 13 स्थानों में से 7 स्थान जीतकर राज्य में पहली बार उसने अपने बलबूते पर सरकार बनायी। काफी संख्या में हिन्दू मतदाताओं ने भी अकालियों को मत दिये। 1987 में पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया जो नवम्बर 1991 तक जारी रहा। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में अकाली दल (मान गुट) को 7 स्थान प्राप्त हुए।

अकाली दल में सदैव से ही दो या अधिक गुटों में विभाजन की स्थिति रही है और फरवरी 92 से पंजाब

विधानसभा और पंजाब से लोकसभा चुनाव के समय चार अकाली दल थे : अकाली दल (मान), अकाली दल (लोंगोवाल–बरनाला), अकाली दल (बादल तलवण्डी), और अकाली दल (के अर्थात् काबुल सिंह)। इनमें से केवल अकाली दल (के) ने ही विधानसभा और लोकसभा चुनाों में भाग लिया और उसे भी असफलता ही हाथ लगी। अन्य अकाली दलों ने फरवरी 92 के विधानसभा चुनावों का बहिष्कार किया।

फरवरी 1997 में सम्पन्न पंजाब विधानसभा के चुनावों में अकाली दल भाजपा गठबन्धनों को शानदार सफलता मिली। गठबन्धन को 117 सीटों पर हुए चुनावों में 93 सीटें तथा 45.8 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। अकेले शिरोमणी अकाली दल को 75 सीटें मिली और अकाली नेता श्री प्रकाश सिंह बादल के नेतृत्व में अकाली भाजपा गठबन्धन की सरकार अस्तित्व में आई।

फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनाव अकाली दल ने भाजपा के साथ मिलकर लड़े और 13 सीटों में से 8 सीटें अकाली दल को प्राप्त हुई।

सितम्बर–अक्तूबर 1999 में 13वीं लोकसभा के चुनाव अकाली दल ने भाजपा के साथ मिलकर राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के तले लड़े और मात्र 2 सीटों पर विजय प्राप्त हुई।

### द्रविड़ मुनेत्र कड़गम तथा अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (D.M.L. and A.D.M.K.)

तमिलनाडु राज्य में द्रविड़ कड़गम एक स्थानीय द्रविड़ आन्दोलन की राजनीतिक शक्ति का प्रतीक है। इसकी मूल जड़े जस्टिस पार्टी (दक्षिण भारतीय उदारवादी संघ) में भी जो गैर ब्राह्मण आन्दोलन था। परिसर के नाम से विख्यात ई.बी. रामास्वामी नाइकर जो 1938 में जस्टिस पार्टी के अध्यक्ष थे, ने राजनीति को तमिल रूप देने का कार्यक्रम शुरू किया और तमिलनाडु में एक नये राज्य द्रविड़िस्तान बनाने की मांग रखी। 1944 में पेरियर ने दल का द्रविड़ कड़गम के नाम से पुनः निर्माण किया और अपना लक्ष्य एक स्वतन्त्र द्रविड़िस्तान की प्राप्ति रखा। इसने तमिल समुदाय को एक पूर्ण इकाई के रूप में राजनीतिक गतिविधियों के द्वारा ऊंचा उठाने के लिए प्रोत्साहित किया। द्रविड़ कड़गम एक ब्राह्मण विरोधी और धर्म विरोधी दल था।

जस्टिस पार्टी के सक्रिय सदस्य और पेरियर के मुख्य समर्थक तथा द्रविड़ कड़गम के एक समूह के नेता सी. एन. अन्नादुराई ने 1949 में एकनेय दल द्रविड़ मुनेत्र कड़गम का गठन किया। यह एक प्रकार से पेरियर की प्रजातन्त्र विरोधी नीति के विरूद्ध विरोध था। अन्नादुराई जनता के प्रिय महान नेता व ओजस्वी वक्ता थे, उन्होंने जल्दी ही द्रविड़मुनु कड़गम को तमिल राजनीति में विशिष्ट स्थान दिया दिया। 1957 में पहली बार द्रविड़ मुनेत्र कड़गम ने चुनावों मे हिस्सा लिया और 15 प्रतिशत मत प्राप्त किये। इसके पश्चात् इसने तीव्र प्रगति की तथा 1967 के आम चुनाव में डी.एम.के. को 48 स्थान प्राप्त हुए। हिन्दी विरोध और आगे चलकर 'राज्यों के लिए स्वतन्त्रता' इस दल की नीति और कार्यक्रम के प्रमुख आधार रहे हैं।

अन्ना डी.एम.के – डी.एम.के. अध्यक्ष करूणानिधि और कोषाध्यक्ष एम.जी. रामचन्द्रन के बीच मतभेद उत्पन्न हो जाने पर अक्तूबर 1972 में एम.जी. रामचन्द्रन ने डी.एम.के. से अलग होकर अन्ना डी.एम.के. का निर्माण किया। अन्ना डी.एम.के. एक क्षेत्रीय दल है, जिसका प्रभाव क्षेत्र तमिलनाडु और पाण्डिचेरी में है। जून 1977 के राज्य विधानसभा चुनावों में अन्ना डी.एम.के. ने 130 स्थान प्राप्त किये तथा एम.जी. रामचन्द्रन के नेतृत्व में राज्य मन्त्रिमण्डल का गठन किया। अपनी स्थापना के समय से ही अन्ना डी.एम.के. की मूलनीति यथासम्भव केन्द्र के शासक दल के साथ सहयोग करने की रही है। इसी कारण 1977 के लोकसभा तथा विधानसभा चुनाव इसने सत्ता कांग्रेस के साथ सहयोग करते हुए लड़े, लेकिन जब केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार बन गयी तो जनता पार्टी के समीप आने के कार्य किया और

जब इसका पतन हो गया तो जनता 'एस' के साथ सरकार में भागीदारी की। मई 1980 के विधानसभा चुनावों में तमिलनाडु में दो गठबन्धन थे – पहला, कांग्रेस डी.एम.के. गठबन्धन तथा दूसरा वामपन्थी तथा अन्य छोटे दलों के साथ अन्ना डी.एम.के. गठबन्धन। इसमें अन्ना डी.एम.के. गठबन्धन ने सफलता प्राप्त कर तमिलनाडु में अपनी सरकार का निर्माण किया।

तमिलनाडु के दोनों राज्य स्तरीय दलों की राज्य में नीति एक सी है और दोनों ही अखिल भारतीय सन्दर्भ में केन्द्र में सत्तारूढ़ दलों – चाहे कांग्रेस हो या जनता पार्टी साथ देते रहे है या साथ देने के इच्छुक रहे है। रॉबर्ट हार्डग्रेव के अनुसार, ''डी.एन.के.आर. के एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी जरूर है पर इन दोनों दलों की नीतियों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।'' दोनों दलों के कार्यक्रम के खास–खास मुद्दे इस प्रकार है – (1) समाज के पिछड़े वर्गों को समान अवसर किये जाये तथा छुआछूत कोपूरी तरह से समाप्त किया जाये। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सरकार ने राज्य के लगभग 65 हजार निर्धन बच्चों को दोपहर का भोजन मुफ्त देने की योजना लागू करके एक साहसिक कदम उठाया। 1982–83 के बजट में इसके लिए एक अरब रूपये की व्यवस्था की गयी, (2) अन्धविश्वास नष्ट किये जायें तथा हर क्षेत्र में 'बुद्धिवाद' (Rationalism) और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जाये, (3) तमिल भाषा और संस्कृति का प्रचार किया जाये तथा हिन्दी के जबरन लादे जाने का विरोध किया जाये, (4) डी.एम.के. की एक प्रमुख मांग यह रही है कि राज्यों को अधिक स्वायत्तता और वित्तीय साधन दिये जायें। 1970 में डी.एम.के. ने 'राज्य स्वायत्तता सम्मेलन' आयोजित किया। राजपन्नार समिति प्रतिवेदन के आधार पर अपनी राज्य स्वायत्तता की मांग को तार्किक आधार प्रदान किया।

दिसम्बर 1984 में तमिलनाडु विधानसभा चुनावों में अन्नाद्रमुक को 11 सीटें प्राप्त हुई। वैसे उसने लोकसभा की 12 सीटों के लिए ही चुनाव लड़ा था। राज्य विधानसभा को 234 सीटों में से उसे 133 सीटें प्राप्त हुई और इस प्रकार तमिलनाडु में राज्य राजनीति की बागड़ोर पुनः अन्ना डी.एम.के. दल के हाथों में गयी।

फरवरी 1989 में तमिलनाडु विधानसभा में डी.एम.के. दल को 147 स्थान प्राप्त हुए। इसके विपरीत अन्नाद्रुमुक (जयललिता) को 21.7 प्रतिशत मत और 27 स्थान एवं अन्ना द्रमुक (जानकी) को 9.1 प्रतिशत मत और 1 स्थान मिला। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में डी.एम.के. को एक भी सीट प्राप्त नहीं हुई जबकि अन्ना डी.एम.के (जयललिता) को 13 सीटें मिलीं 1991 में द्रमुक सरकार को बर्खास्त कर राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। तमिलनाडु विधानसभा चुनावों में जयललिता और अन्नाद्रमुक को अप्रत्याशित सफलता मिली। जहां द्रमुक को मात्र एक सीट मिली वहाँ अन्ना द्रमुक को 163 सीटें मिली और जयललिता मुख्यमंत्री पद पर आसीत हुई। जयललिता लोगों को यह विश्वास दिलाने में कामयाब रही कि द्रमुक ने राज्य में उग्रवादी गतिविधियों को शह दी। मार्च 93 में अन्ना द्रमुक की नेता जयललिता ने औपचारिक घोषणा कर कांग्रेस (ई) के साथ गठबन्धन की स्थिति को समाप्त कर दिया।

1996 के लोकसभा तथा तमिलनाडु विधानसभा चुनाव डी.एम.के. तमिल मनीला कांग्रेस के साथ गठबन्धन तथा सिनेमाई व्यक्तित्व रजनीकान्त के समर्थन से बड़े और भारी सफलता अर्जित की। संयुक्त मोर्चे के एक भागीदार दल के रूप में डी.एम.के. देवगौड़ा और इन्द्रकुमार गुजराल के नेतृत्व में बनने वाली केन्द्रीय सरकार का सहभागी दल था। फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनाव अन्ना डी.एम.के ने भाजपा के साथ मिलकर लड़े और 18 सीटें प्राप्त हुई जबकि डी.एम.के. की मात्र 5 सीटें मिली। डी.एम.के. ने तमिल मनीला कांग्रेस के साथ मिलकर चुनाव लड़ा था।

सितम्बर–अक्तूबर 1999 में सम्पन्न 13वीं लोकसभा के चुनाव द्रमुक ने राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के तहत लड़े और 12 सीटों पर उसके प्रत्याशी विजयी हुए। द्रमुक के प्रतिनिधि वायजपेयी मन्त्रिमण्डल में भी शामिल हुए।

अन्नाद्रमुक ने अप्रैल 1999 में वाजपेयी सरकार से समर्थन वापिस लेकर उसे गिराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 13वीं लोकसभा के चुनाव अन्नाद्रमुक ने कांग्रेस के साथ तालमेल कर लड़े और उसके 10 प्रत्याशी विजयी हुए।

मई 2001 में सम्पन्न तमिलनाडु विधानसभा के चुनावों में अन्ना द्रमुक के नेतृत्व वाले गठबन्धन ने मुख्यमन्त्री करूणानिधि के नेतृत्व को शिकस्त देकर सत्ता पर अधिकार कर लिया। राज्य विधान की 234 सीटों हेतु सम्पन्न चुनावों में अन्ना द्रमुक को 196 तथा द्रमुक मोर्चे को केवल 36 सीटें प्राप्त हुई इनमें अकेले अन्ना द्रमुक को 27 सीटों पर सफलता मिली।

## नेशनल कांफ्रेंस (National Conference)

नेशनल कांफ्रेंस की मूल जड़ 1930 के दशक में 'वाचनालय दल' के रूप में थी। लेख मोहम्मद अब्दुल्ला इस छोटे से दल के राजनीतिक वाद–विवादों का नेतृत्व करते रहे। 'वाचनालय दल' शीघ्र ही अखिल जम्मू व कश्मीर मुस्लिम कांग्रेस में बदल गया। 1938 में अपने पहले अधिवेशन में नेशनल कांफ्रेंस ने वयस्क मताधिकार की तथा अल्पसंख्यकों के लिए स्थानों के आरक्षण की सिफारिश की। भारत के विभाजन के समय नेशनल कांफ्रेंस के नेता जेल में थे। भारतीय संघ में कश्मीर के विलय के बाद शेख अब्दुल्ला प्रधानमन्त्री बने। उन्होंने भारतीय विधानसभा पर अनुच्छेद 370 को अंगीकार करने के लिए जोर डाला, जिसके अन्तर्गत जम्मू व कश्मीर राज्य के भारत गणराज्य के साथ विशेष सम्बन्ध स्थापित किये गये।

केन्द्रीय सरकार के साथ कश्मीर के मामलों के एकीकरण की प्रक्रिया का शेख अब्दुल्ला और उनकी नेशनल कांफ्रेंस ने विरोध किया तथा इससे इन्हें अगस्त 1953 में कैद व नजरबन्द कर दिया गया। जनवरी 1964 में मुख्यमन्त्री सादिक ने नेशनल कांफ्रेंस 'कश्मीर स्वतन्त्रता आन्दोलन के सबसे पुराने दल' के उन्मूलन पर अध्यक्षता की। भूतपूर्व प्रधान बख्शी गुलाम मुहम्मद ने स्वयं अपने नेतृत्व में नेशनल कांफ्रेंस को पुनर्जीवित करने का निर्णय किया।

जम्मू एवं कश्मीर विधानसभा के लिए 1967 के आम चुनावों में बख्शी की नेशनल कांफ्रेंस ने केवल आठ स्थान प्राप्त किये, हालांकि इसने कुल मतों का 34 प्रतिशत प्राप्त किये। यह जनता में असन्तोष का केन्द्र बिन्दु बन गयी।

1968 के शुरू में शेख अब्दुल्ला को बिना शर्त रिहा कर दिया। सितम्बर 1972 में कश्मीर में हुए नागरिक मतदान में उसके समर्थकों की लगभग सम्पूर्ण विजय ने नेशनल कांफ्रेंस की राजनीतिक शक्ति के पुनः उभर आने की घोषणा की। फरवरी 1975 में शेख अब्दुल्ला तथा प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी के बीच समझौता सम्पन्न हुआ। इस समझौते के परिणामस्वरूप शेख अब्दुल्ला तथा उनकी नेशनल कांफ्रेंस ने आत्म–निर्णय जनमत संग्रह का नारा छोड़ दिया। इस समझौते के आधार पर शेख के द्वारा जम्मू–कश्मीर में कांग्रेस के सहयोग से सत्ता ग्रहण की गयी, लेकिन नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस दल के सम्बन्ध तनावपूर्ण बनते गये। मार्च 1977 के चुनावों में स्वतन्त्रता के बाद पहली बार शेख अब्दुल्ला तथा उनका दल नेशनल कांफ्रेंस ने डाले गये मतों का 48 प्रतिशत प्राप्त किया तथा मुख्यमन्त्री शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में सरकार का गठन किया गया।

जून 1983 में कश्मीर विधानसभा चुनावों में सत्तारूढ़ नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (ई) में जबरदस्त टक्कर हुई। नेशनल कांफ्रेंस को 64 स्थान प्राप्त हुए और डॉ० फारूख अब्दुल्ला पुनः मुख्यमन्त्री पद पर आसीत हुए। उसके बाद नेशनल कांफ्रेंस का स्वर केन्द्र विरोधी होता रहा और डॉ० फारूख 'राज्य स्वायत्तता' की मांग करने लगे।

अक्तूबर 1983 में श्रीनगर में प्रतिपक्षी नेताओं का सम्मेलन आयोजित करके उन्होंने राज्य स्वायत्तता और केन्द्र राज्य सम्बन्धों के पुनः निर्धारण का जोरदार समर्थन किया।

जुलाई 1984 में नेशनल कांफ्रेंस से दल–बदल के कारण डॉ० फारूख की सरकार अल्पमत में आ गयी और राज्यपाल जगमोहन ने उसे बर्खास्त कर दिया। केन्द्र ने फारूख अब्दुल्ला पर यह आरोप लगाया था कि वह पृथकतावादी तत्वों से मिले हुए हैं और भारत विरोधी गतिविधियों में सलंग्न है। जम्मू–कश्मीर की बागड़ोर जी.एम. शाह के हाथों में सौंप दी गयी जो नेशनल कांफ्रेंस के प्रतिद्वन्द्वी गुट के नेता थे। दिसम्बर 1984 में लोकसभा चुनावों में नेशनल कांफ्रेंस ने 4 प्रत्याशी खड़े किये और तीन स्थानों पर उसे विजय प्राप्त हुई। नवम्बर 1986 में कश्मीर में राष्ट्रपति शासन की जगह लोकप्रिय सरकार का गठन किया गया, जिसका नेतृत्व डॉ० फारूख अब्दुल्ला कर रहे थे। सरकार में नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (इ) दोनों ही दलों के व्यक्ति शामिल थे। मार्च 1987 के विधानसभा चुनाव में दो दलों के इस मोर्चे को भारी सफलता मिली और कश्मीर में पुनः एक मिली–जुली सरकार का गठन किया गया। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में नेशनल कांफ्रेंस को 6 में से 3 सीटें प्राप्त हुई।

1990–96 की कालावधि में जम्मू–कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियाँ बड़े पैमाने पर शुरू हुई। जनवरी, 1990 में वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू किया गया और जुलाई 1990 से 8 अक्तूबर 1996 तक वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू रहा। सितम्बर 1996 में लगभग 9 वर्ष बाद वहाँ विधानसभा की 87 सीटों के लिए चुनाव सम्पन्न हुए। चुनाव परिणामों से स्पष्ट होता है कि कश्मीर की जनता ने पुनः डॉ० अब्दुल्ला की नेशनल कांफ्रेंस को सौंपने का निश्चय किया। उनकी पार्टी को 57 सीटें प्राप्त हुई। 9 अक्तूबर, 1996 को डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने मुख्यमन्त्री पद की शपथ ली।

12वीं लोकसभा में नेशनल कांफ्रेंस के 3 प्रत्याशी चुनाव जीतकर पहुंचे जबकि 1999 में सम्पन्न 13वीं लोकसभा के चुनावों में 4 सीटों पर नेशनल कांफ्रेंस के प्रत्याशी विजयी हुए। 1998 में नेशनल कांफ्रेंस ने भाजपा गठबन्धन को समर्थन प्रदान किया और 1999 में राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन में शामिल होकर राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका में निर्वाह का प्रयत्न किया है।

### मुस्लिम लीग (Muslim League)

सन् 1996 में स्थापित यह दल देश के विभाजन के बाद भारत से लगभग समाप्त हो गया। 1970 के लगभग यह पहले केरल और फिर तमिलनाडु में सक्रिय हो गया। मार्च 1977 के चुनावों में इसने लोकसभा को दो सीटें (तमिलनाडु और केरल) जीती। केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात और उत्तर भारत के कुछ राज्यों में यह दल अपने प्रभाव के लिए सचेष्ट है। मुस्लिम लीग का मुख्य उद्देश्य भारतीय मुसलमानों के हितों और मुस्लिम समुदायों के विशेष सामाजिक कानूनों आदि की रक्षा है। जनवरी 1980 के चुनावों में मुस्लिम लीग ने लोकसभा की 3 सीटें जीती इनमें 2 केरल से तथा 1 तमिलनाडु से मिली। 1996 और 1998 के लोकसभा चुनावों में मुस्लिम लीग को क्रमशः 2–2 सीटें प्राप्त हुई। 1999 के लोकसभा चुनावों में मुस्लिम लीग के दो सदस्य लोकसभा में जीतकर पहुंचे। केरल में इसका अच्छा प्रभाव है। वस्तुतः इसने मालाबार जैसे केरल के कुछ भागों और तमिलनाडु के मुस्लिम बहुत इलाके में अपनी स्थायी निर्वाचन आधार बना लिया है। 1981–82 में लीग के नेता  मोहम्मद कोया केरल के मुख्यमन्त्री भी रह चुके हैं। केरल में मिली–जुली सरकारों के निर्माण में लीग का सहयोग एक प्रभावक तत्व है। इसने राष्ट्रीय स्तर पर अधिकतर कांग्रेस (ई) का समर्थन किया है। अपने कार्यक्रम और लक्ष्य से यह एक समुदाय अभिमुख दल है।

### तेलगुदेशम् (Telgu Desham)

तेलगूदेशम् आंध्र प्रदेश में नवनिर्मित राज्य स्तरीय दल है। जनवरी 1983 के आन्ध्र प्रदेश विधानसभा के चुनावों के 9–10 माह पूर्व इस दल की स्थापना की गयी। आन्ध्र प्रदेश कांग्रेस का गढ़ रहा है और तेलगूदेशम् की स्थापना कांग्रेस शासन की प्रतिक्रिया रही है। आमतौर पर यह माना जाता है कि अकेले रामाराव ने तेलगूदेशम् पार्टी का गठन

किया। मगर वास्तविकता यह है कि इस राजनीतिक दल की स्थापना में आन्ध्र प्रदेश के कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों का हाथ है, जिनकी राजनीतिक आकांक्षाएँ किसी से छिपी नहीं हुई है। इसी सिलसिले में 'ई–नाडु' तेलुगू समाचार पत्र के संस्थापक राजजीराव का नाम चर्चित हो गया है जो क्षेत्रीय समस्याओं के प्रकाशन से ही लोकप्रिय हो गया। राजजीराव और उनके साथियों ने कई वर्षों से पूरे आन्ध्र प्रदेश में क्षेत्रीय दल का गठन कर सकते थे क्योंकि वे समझ चुके थे कि कांग्रेस के शासन से प्रदेश के लोग क्षुब्ध हैं मगर कोई व्यावहारिक विकल्प न होने के कारण लोगों को बार–बार श्रीमती गांधी के करिश्में की शरण लेनी पड़ती थी।

जनवरी 1983 में आन्ध्र विधानसभा के चुनावों में तेलगूदेशम् को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। उसने 289 स्थानों पर चुनाव लड़ा और 294 सदस्यीय विधानसभा में उसके 202 सदस्य निर्वाचित हुए। एन.डी. रामाराव मुख्यमन्त्री बने।

तेलगूदेशम् का चुनावी कार्यक्रम इस प्रकार था :

1. उनकी पार्टी राज्य को स्वच्छ और स्थिर प्रशासन प्रदान करेगी।
2. लोगों को चावल दो रूपये प्रति किलो की दर से उपलब्ध कराया जायेगा।
3. अफसरों की जवाबदेही पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।
4. निरर्थक और अलाभकारी खर्चों की कटौती होगी।
5. उद्योगों, कृषि, सिंचाई, बिजली और ग्रामीण विकास आदि क्षेत्रों में सलाह–मशविरे के लिए आवश्यक मंच बनाये जायेंगे, जिससे जन प्रतिनिधियों को शामिल किया जाएगा।
6. उन सभी नियमों को खत्म कर दिया जायेगा, जिन पर बेकार का खर्चा होता है।
7. प्राथमिक पाठशालाओं के छात्रों को दोपहर का भोजन देने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम बनाया जायेगा।
8. तेलगू प्रदेश की सरकारी भाषा होगी, सभी कामकाज इसी भाषा में किया जायेगा। मगर अन्य राज्यों और केन्द्र से हिन्दी ही सम्पर्क भाषा है। अंग्रेजी एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है।

सत्तारूढ़ होने के बाद तेलगूदेशम् ने पड़ोसी राज्यों और प्रतिपक्षी दलों के साथ सहयोग की नीति अपनायी। रामाराव ने मन्दिरों की नगरी तिरूपति में एक महिला विश्वविद्यालय की स्थापना करवायी। वे छः हजार रूपये वार्षिक आय से कम वाले परिवारों को दो रूपये प्रति किलो की दर पर चावल दिलवाने लगे।

तेलगूदेशम् दल राज्य स्वायत्तता पर प्रबल समर्थक है। विजयवाड़ा और श्रीनगर में आयोजित सम्मेलनों में दल ने केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर पुनर्विचार कर मांग की।

दिसम्बर 1984 में लोकसभा चुनावों में तेलगूदेशम् ने 32 स्थानों पर चुनाव लड़ा और उसे 28 सीटें प्राप्त हुई। आठवीं लोकसभा में तेलगूदेशम् सबसे बड़े विपक्षी दल के रूप में उभरा। मार्च 1989 के राज्य विधानसभा चुनावों में तेलगूदेशम् ने विधानसभा की दो तिहाई से अधिक सीटें जीती। नवम्बर 1989 के राज्य विधानसभा चुनावों में तेलगूदेशम् को भारी पराजय का मुंह देखना पड़ा। लोकसभा को 42 सीटों में तेलगू देशम को सिर्फ 2 सीटें मिली। विधानसभा चुनाव में यह पार्टी हार गई तथा 5 वर्ष बाद आन्ध्र प्रदेश में पुनः कांग्रेस सरकार लौट आई। 1991 के लोकसभा चुनावों में इसे मात्र 13 सीटें मिली। मार्च 1992 में इस पार्टी का विभाजन हो गया। लोकसभा में इसके 5 सदस्यों ने पृथक गुट बनाकर तेलगूदेशम् से नाता जोड़ लिया। दिसम्बर 1994 में हुए विधानसभा चुनावों में एन.डी. रामाराव के नेतृत्व में तेलगूदेशम् अप्रत्याशित बहुमत से विजयी हुई। पार्टी को 294 में से 225 सीटें प्राप्त हुई। अगस्त 1995 में

तेलगूदेशम् का पुनः विभाजन हो गया। सत्तारूढ़ तेलगूदेशम् से अलग हुए गुट के नेता चन्द्रबाबू नायडू को एन.टी. रामाराव के स्थान पर पार्टी का अध्यक्ष चुन लिया गया। तेलगूदेशम् के विभाजन का मूल कारण रामाराव की दूसरी पत्नी लक्ष्मी पार्वती की राजनीतिक महत्वाकांक्षी थी। लक्ष्मी पार्वती की ओर से राजनीति में जो भूमिका निभाई गई उससे विधायक और मंत्रीगण नाराज हो गये। तेलगूदेशम् का विभाजन पार्टी के नेता रामाराव की कार्यशैली के खिलाफ पार्टी में आन्तरिक विद्रोह का भी परिणाम कहा जा सकता है।

1996 के लोकसभा चुनावों में तेलगूदेशम् को 16 सीटें प्राप्त हुई। मुख्यमन्त्री चन्द्रबाबू नायडू के सक्रिय प्रयत्नों के केन्द्र में यूनाईटेड फ्रण्ट की सरकार बनी जिसमें तेलगूदेशम् एक सहभागी दल था। श्री चन्द्रबाबू नायडू यूनाईटेड फ्रन्ट की संचालन समिति के संयोजक थे तथा देवगौडा सरकार के त्यागपत्र के बाद प्रधानमंत्री पद पर इन्द्रकुमार गुजराल के पक्ष में आम सहमति तैयार करने में उनकी प्रभावी भूमिका रही। फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनावों में तेलगूदेशम् को यद्यपि 12 सीटें प्राप्त हुई किन्तु केन्द्र में सरकार बनाने की चाबी उसके नेता चन्द्रबाबू नायडू के हाथों में आ गई। 13 माह की वाजपेयी सरकार में उनका आचरण प्रशंसनीय रहा। 1999 के लोकसभा एवं विधानसभा चुनाव चन्द्रबाबू नायडू के लिए नई प्रौद्योगिकी से लैस प्रशासन पर जनमत संग्रह थे। आन्ध्र प्रदेश में तेलगूदेशम् ने भाजपा से समझौता कर यह चुनाव लड़ा। 294 सदस्यीय राज्य विधानसभा के लिए सम्पन्न चुनावों में तेलगूदेशम् पार्टी की 179 सीटों पर विजय प्राप्त हुई। लोकसभा के लिए उसके 29 प्रत्याशी विजयी हुए। उसके प्रत्याशी जी.एन. बालयोगी लोकसभा के स्पीकर पद पर आसित है।

असम गण परिषद् –असम का प्रमुख क्षेत्रीय दल असम गण परिषद् है। जिस तेजी से इसका उत्थान हुआ उतनी ही तेजी से इसके प्रभाव का ह्रास भी हुआ। असम गण परिषद् का उदय असम आन्दोलन (1979-1985) की कोख में हुआ। 1979–85 में असमिया मूल के लोगों में यह आशंका घर कर चुकी थी कि वे अल्पसंख्यक बन जायेंगे क्योंकि भारत की सीमा पार लोगों लोग आकर बसते जा रहे हैं। इसलिए 1979 में वहाँ एक विशाल आन्दोलन की शुरूआत हुई। इस आन्दोलन का नेतृत्व शुरू से आखिर तक विद्यार्थियों ने किया। विद्यार्थी नेताओं ने अन्त तक इस आग्रह को कायम रखा कि वे राजनीतिक दल से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे। अगस्त 1985 में असम समझौता हुआ, जिसके तहत् व्यवस्थित रूप से चुनाव हुए। उसमें आन्दोलनकारियों ने चुनाव लड़ने के लिए असम गण परिषद् के नाम से एक क्षेत्रीय दल का गठन किया जिसने विधानसभा में पूर्ण बहुमत हासिल किया। प्रफुल्ल कुमार महन्त, जो विद्यार्थी आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे, 24 दिसम्बर 1985 को असम के मुख्यमन्त्री बने। बाद में असम गण परिषद् राष्ट्रीय मोर्चे का घटक बन गया और विश्वनाथ प्रतापसिंह सरकार में उसके प्रतिनिधि शामिल हुए।

असम गण परिषद् की सरकार वोडो आन्दोलन से निबटने में असमर्थ रही। उल्फा के नेतृत्व में चलाये जा रहे अलगाववादी आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया था। अतः चन्द्रशेखर सरकार ने असम सरकार को बर्खास्त कर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया। जून 1991 के चुनावों में असम गण परिषद् को 121 में से 19 सीटें ही प्राप्त हुई और राज्य में कांग्रेस (ई) सत्तारूढ़ हो गई।

असम गण परिषद् के युवा नेता अपने पांच वर्ष के शासनकाल में जनता का विश्वास खोने लगे थे। वे भ्रष्टाचार के दलदल में फंसते गये। वे विदेशियों की समस्या को भूल गये, जिसके लिए छः वर्षों तक आन्दोलन किया था। असम गण परिषद् विभाजित हो गई और उसका करिश्मा लुप्त होने लगा।

1995 में असम गण परिषद् में पुनः एकता स्थापित हो गई और परिषद् ने विधानसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर लिया। 1996 के लोकसभा चुनावों में उसे 5 सीटें प्राप्त हुई और केन्द्र में युनाइटेड फ्रण्ट की मिलीजुली सरकार

में असम गण परिषद् के प्रतिनिधि भी शामिल हुए। फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा तथा 1999 में सम्पन्न 13वीं लोकसभा के चुनावों में असम गण परिषद् को एक भी सीट हासिल नहीं हुई।

मई 2001 में सम्पन्न असम विधानसभा चुनावों में असम गण परिषद् को 126 सदस्यीय विधानसभा में केवल 20 सीटों पर विजय प्राप्त हुई। मुख्यमन्त्री प्रफुल्ल कुमार स्वयं गुवाहाटी के दिसपुर निर्वाचन क्षेत्र से हार गये।

### बहुजन समाज पार्टी (Bahujan Samaj Party)

बहुजन समाज पार्टी की स्थापना 14 अप्रैल, 1984 को पंजाब में जन्में कांशीराम ने डॉ० भीम राव अम्बेडकर के जन्म दिन के अवसर पर उत्तर प्रदेश में की। इस पार्टी की स्थापना में दो दबाव समूहों बामसैफ (BAMCEF – Backward and Minority Communities Employees Federation) और डी.एस.–4 (DS-4) ने मिलकर की थी। बहुजन समाज पार्टी जिसे बसपा कहा जाता है का पहला नाम डी.एस.–4 (DS-4) था, जिसका अर्थ है दलित, शोषित समाज, संघर्ष समिति (Dalit, Shoshit Samaj Sangharsh Samiti) यह पार्टी साहू महाराज, महात्मा फूले, महात्मा रामस्वामी नयनार, डॉ० भीमराव अम्बेडकर जैसे समाज सुधारकों के विचारों में आस्था रखते हैं। पार्टी के संस्थापक और वर्तमान अध्यक्ष कांशीराम के अनुसार अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन–जातियों शैक्षणिक ताकि सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग अल्पसंख्यक कारीगर और वे भी सारे दलित जिनता पूंजीपतियों ने शोषण किया है, बहुजन समाज है। बहुजन समाज पार्टी की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक नीतियाँ एवं कार्यक्रमों के प्रति सहमति रखने वाला कोई भी व्यक्ति पार्टी का सदस्य बन सकता है। यह पार्टी सामाजिक परिवर्तन की समर्थक है। इस पार्टी पर जाति विशेष के आधार पर संगठित होने का आक्षेप लगाया जाता है लेकिन यह पार्टी सभी कमजोर वर्गों के प्रतिनिधित्व का दावा करती है। प्रारंभ में बहुजन समाज पार्टी का प्रभव केवल पंजाब तक ही सीमित था लेकिन धीरे–धीरे इसका प्रभाव देश के अन्य राज्यों विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा आदि में फैल गया। 1994 से यह दल भारतीय राजनीति को बहुत अधिक प्रभावित कर रहा है।

### बहुजन समाज पार्टी को राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता (Recognition of Bahujan Samaj Party as National Political Party)

चुनाव आयोग ने 28 नवम्बर 1997 को बहुजन समाज पार्टी को राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्रदान की। चुनाव आयोग के निर्णय के अनुसार बहुजन समाज पार्टी के रूप में असम, सिक्किम और पांडिचेरी को छोड़कर सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में अपने चुनाव चिन्ह 'हाथी' का प्रयोग कर सकेगी।

### पार्टी का चुनाव निशान और झण्डा (Election Symbol and Flag of the Party)

बहुजन समाज पार्टी को चुनाव आयोग ने हाथी का चुनाव चिन्ह प्रदान किया है। लेकिन, पार्टी इस चुनाव चिन्ह का प्रयोग असम, सिक्किम और पांडिचेरी में नहीं कर सकेंगी। पार्टी का झण्डा नीले रंग का है जिस पर हाथी का निशान है।

### पार्टी के पदाधिकारी (Office Bearers of the Party)

बहुजन समाज पार्टी के वर्तमान अध्यक्ष कांशीराम हैं और सुश्री मायावती इसकी उपाध्यक्षा है। अरविन्द नेताम तथा तीन अन्य पार्टी के महासचिव है।

### बहुजन समाज पार्टी की नीतियाँ और कार्यक्रम (Policies and Programmes of Bahujan Samaj Party)

बहुजन समाज पार्टी का उद्देश्य बहुजन समाज को समानता व न्याय की अधिकार दिलाना है। पार्टी संविधान निर्माता

डॉ० भीम राव अम्बेडकर के द्वारा दलितों के उद्धार के लिए चलाए गए संघर्ष को आगे बढ़ाने में विश्वास करती है। पार्टी दलितों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन जातियों तथा पिछड़े वर्गों के सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक विकास के लिए अपनी वचनबद्धता रखती है। बहुजन पार्टी की नीतियों और कार्यक्रमों का वर्णन इस प्रकार है :–

1. **सामाजिक कार्यक्रम (Social Programme)**– बहुजन समाज पार्टी महात्मा फूले, महात्मा रामास्वामी नयनार, डॉ० भीम राव अम्बेडकर आदि समाज सुधारकों की विचारधारा में विश्वास रखती है। बसपा दलित वर्गों, अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्गों के सामाजिक न्याय दिलाने के लिए वचनबद्ध है। इस पार्टी का सामाजिक कार्यक्रम निम्नलिखित हैं–

   (i) छुआछूत को समाप्त करना और छुआछूत का पालन करने वालों के विरूद्ध कठोर कानूनी कार्यवाही करना।

   (ii) धर्म, जाति, जन्म, नस्ल आदि के आधार पर किये जा रहे भेदभाव को समाप्त करना।

   (iii) दलितों के सामाजिक तथा आर्थिक शोषण को समाप्त करना।

   (iv) दलितों के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए विशेष योजनाओं को लागू करना।

   (v) दलित वर्गों तथा पिछड़े वर्गों की स्त्रियों की स्थिति में सुधार करना तथा इसके लिए विशेष योजनाओं का निर्माण करना और उन्हें लागू करना।

   (vi) मनुवादी तथा ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था को समाप्त करना।

   (vii) डॉ० भीमराव अम्बेडकर के नाम पर शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करना।

   (viii) दलित वर्गों के विद्यार्थियों के लिए तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा का विशेष रूप से प्रबन्ध करना।

   (ix) दलितों को प्रशासन में उचित प्रतिनिधित्व देना।

   (x) अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित कबीलों के विकास के लिए विभिन्न आयोग गठित करना।

2. **राजनीतिक कार्यक्रम (Political Programme)**– बहुजन समाज पार्टी अवसरवादी राजनीति में विश्वास करती है। इसलिए इस पार्टी का राजनीतिक कार्यक्रम स्पष्ट व निश्चित नहीं है। पार्टी का राजनीतिक कार्यक्रम अग्रलिखित प्रकार से है :

   (i) 12वीं और 13वीं लोकसभा के अवसर पर अनेक स्थानों पर जनसभाओं को सम्बोधित करते हुए पार्टी अध्यक्ष कांशीराम ने कहा था, ''हम अवसरवादी राजनीति करते हैं। हमारा लक्ष्य देश में चलती फिरती मजबूत सरकार देखना है ताकि जल्दी चुनाव हों। अब सत्ता उच्च जाति के लोगों के हाथ से निकल कर हमारे दलित हाथों में आनी चाहिए।'' सितम्बर–अक्तूबर 1999 में 13वीं लोकसभा के चुनाव प्रचार के दौरान भी कांशीराम ने कहा था कि ''हम मजबूत नहीं मजदूर सरकार देखना चाहते हैं।'' कांशीराम के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि बसपा का राजनीतिक लक्ष्य केवल सत्ता हथियाना है।

   (ii) बहुजन समाज पार्टी वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था में विश्वास रखती है और इसमें लोकतान्त्रिक साधनों द्वारा परिवर्तन लाने के पक्ष में है।

   (iii) पार्टी मजबूत केन्द्र के पक्ष में है।

(iv) लोकतन्त्र को मजबूत बनाने के लिए चुनाव प्रणाली में सुधार किया जाए।

(v) प्रशासनिक तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए कड़ी कानूनी कार्यवाही करने तथा जनमत को जागृत करने पर जोर दिया जाएगा।

(vi) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को संवैधानिक तरीकों से हल किया जाना चाहिए।

3. **आर्थिक कार्यक्रम (Economic Programme)** : बसपा का आर्थिक कार्यक्रम अथवा नीतियाँ इस प्रकार हैं:–

(i) उत्पादन के साधनों पर थोड़े से व्यक्तियों के स्थान पर बहुजन समाज का नियन्त्रण स्थापित करना।

(ii) दलितों तथा गरीबों को जमींदारों, साहूकारों तथा रजवाड़ों के शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए विशेष प्रयास करना।

(iii) ऐसी अर्थव्यवस्था की स्थापना करना जिसके अन्तर्गत आर्थिक शोषण न किया जा सके।

(iv) भूमिहीन किसानों और छोटे किसानों की स्थिति में सुधार करने के लिए विशेष कार्यक्रम बनाना तथा उसे लागू करना।

(v) बेरोजगारी को दूर करने के लिए तथा रोजगार के अधिक अवसर पैदा करने के लिए उद्योगों की स्थापना करना।

(vi) बाल श्रम को समाप्त करना।

(vii) सार्वजनिक क्षेत्र को सुदृढ़ व शक्तिशाली बनाना।

(viii) लघु तथा कुटीर उद्योगों का विस्तार करना।

(ix) देश के भौतिक साधनों तथा प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग इस ढंग से करना ताकि समस्त समाज की भलाई हो।

(x) देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए योजनाओं को अधिक अच्छे ढंग से लागू करना।

**विदेश नीति (Foreign Policy)**– बहुजन समाज पार्टी गुटनिरपेक्ष नीति का समर्थन करती है और सभी पड़ोसी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के पक्ष में है।

**चुनाव सफलताएँ (Election Successes)**– बहुजन समाज पार्टी ने दलितों के दबाव समूह के रूप में भारतीय राजनीति में पदार्पण किया था। इस पार्टी का तीव्रता से विकास हुआ और उसका प्रभाव यह है कि यह पार्टी आज राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुकी है। इस पार्टी की पकड़ समाज के दलित वर्ग पर है। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के अधिकांश मतदाता जो पहले कांग्रेस पार्टी के समर्थक थे अब इस पार्टी के समर्थक बन गए हैं। इसलिए इस पार्टी के विकास से कांग्रेस पार्टी के समर्थक बन गए हैं। इसलिए इस पार्टी के विकास से कांग्रेस को धक्का लगा है क्योंकि कांग्रेस के एक बड़े वोट बैंक पर बसपा का कब्जा हो गया है।

बहुजन समाज पार्टी ने 1985 में पहली बार पंजाब विधानसभा की सभी सीटों के लिए चुनाव लड़ा। परन्तु उसे कोई भी सीट नहीं मिली। 1989 के लोकसभा चुनाव में पार्टी ने पंजाब में 1 सीट प्राप्त की और 1992 में पंजाब विधानसभा के चुनाव में 12 सीटें प्राप्त की। 1989 में बहुजन समाज पार्टी ने समाजवादी पार्टी के साथ मिलकर

समाजवादी पार्टी के नेता मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व में सरकार बनाई। 3 जून 1995 को बहुजन समाज पार्टी की नेता कुमारी मायावती भारतीय जनता पार्टी के समर्थन से उत्तर–प्रदेश की मुख्यमन्त्री बनी। मायावती के नेतृत्व वालद सरकार 16 अक्तूबर 1995 तक चली।

मई–जून, 1996 के 10वीं लोकसभा के चुनाव में बहुजन समाज पार्टी को 3 स्थान प्राप्त हुए। बहुजन समाज पार्टी ने 1996 का दसवीं लोकसभा का चुनाव शिरोमणि अकाली दल के साथ मिलकर लड़ा था।

इन चुनावों के बहुजन समाज पार्टी को 12 सीटें प्राप्त हुई। मार्च, 1977 में इस पार्टी ने भारतीय जनता पार्टी के साथ मिलकर कुमारी मायावती के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश में तीसरी बार सरकार बनाई। इस पार्टी ने भारतीय जनता पार्टी के साथ समझौता किया था कि दोनों पार्टियों में से प्रत्येक का नेता छः माह की अवधि के लिए मुख्यमन्त्री बनेगा। समझौते के अनुसार 20 सितम्ब्र, 1997 को मुख्यमन्त्री मायावती ने अपने पद से त्याग–पत्र दे दिया और उसके स्थान पर भारतीय जनता पार्टी के नेता कल्याण सिंह उत्तर–प्रदेश के मुख्यमन्त्री बने। यद्यपि कल्याण सिंह की सरकार में बहुजन समाज पार्टी के कई सदस्यों को सम्मिलित किया गया था, लेकिन फिर भी बहुजन समाज पार्टी ने कल्याण सिंह की सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया। इसके परिणामस्वरूप बहुजन समाज पार्टी में फूट पड़ गई और इसके 12 विधायकों ने कल्याण सिंह सरकार को समर्थन दिया।

बहुजन समाज पार्टी को 1997 को पंजाब विधानसभा चुनावों में कोई खास सफलता नहीं मिल सकी। पार्टी को केवल 1 सीट ही मिल सकी। फरवरी–मार्च, 1998 में 12वीं लोकसभा के चुनावों में बहुजन समाज पार्टी ने पंजाब में कांग्रेस के साथ हरियाणा में हरियाणा लोकदल (राष्ट्रीय) के साथ मिलकर चुनाव लड़ा। इन चुनावों में पार्टी को केवल 5 सीटें ही मिल पाई तथा यहाँ तक कि पार्टी अध्यक्ष कांशीराम स्वयं भी चुनाव हार गए। 1999 में हुए 13वीं लोकसभा के चुनावों में बसपा को 14 सीटें प्राप्त हुई। 13वीं लोकसभा के साथ हुए पांच राज्य – कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, अरूणाचल प्रदेश और सिक्किम विधानसभाओं में भी बसपा को कोई विशेष उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं हुई। इन चुनावों में यद्यपि इस पार्टी को लोकसभा में अधिक सीटें नहीं मिल सकी, लेकिन पंजाब, हरियाणा, उत्तर–प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, बिहार आदि राज्यों में इसको प्राप्त वोटों का प्रतिशत काफी ज्यादा था। इस पार्टी को अवसरवादिता, कांशीराम की हठधर्मिता तथा पार्टी का अस्थिरता का नारा पार्टी को कम सीटें दिलाने के लिए उत्तरदायी है।

यद्यपि बहुजन समाज पार्टी की सफलताएँ कोई ज्यादा उल्लेखनीय नहीं है फिर भी इस पार्टी का भारतीय राजनीति में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इस पार्टी का महत्व इस बात में है कि इसने वर्षों से दलित, शोषित, पीड़ित तथा अपमान सहने वाले उस समाज में एक नई जागृति पैदा की है, जिसके लिए गांधी जी तथा अम्बेडकर आदि समाज सुधारकों ने पूरा जीवन लगा दिया।

### अन्य राज्यों में क्षेत्रीय और राज्य स्तर के दलों के परिदृश्य (The Phenomenon of Regional or State Parties in Other States)

क्षेत्रीय दलों में विशाल हरियाणा राज्य में एक समय अपना अच्छा प्रभाव रखती थी और जून 1977 के हरियाणा विधानसभा चुनावों में इसने 4 स्थान प्राप्त किये। बंसीलाल के नेतृत्व में बनी हरियाणा विकास पार्टी हरियाणा का एक क्षेत्रीय दल है। 11वीं लोकसभा चुनाव तथा हरियाणा विधानसभा चुनाव (1966) में इस पार्टी ने भाजपा के साथ गठबन्धन स्थापित किया और इस गठबन्धन से दोनों दलों को लाभ हुआ। महाराष्ट्रवादी गोमांतक दल का गोवा में प्रभाव है। वहाँ यह दल सत्ता में भी रहा है। मार्च 1977, में इसने लोकसभा में एक सीट जीती। रिपब्लिकन पार्टी ऑफ

इण्डिया का प्रभाव महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश और पंजाब में है। इसका एकमात्र ध्येय अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा करना है। फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनावों में इस दल को 4 स्थान प्राप्त हुए।

केरल राज्य अन्य राज्यों की तुलना में बहुत छोटा है पर वहाँ बहुत–सी क्षेत्रीय पार्टियाँ हैं। कांग्रेस नाम से कम से कम चार पार्टियाँ हैं – कांग्रेस (आई), कांग्रेस (एस), केरल कांग्रेस (मणिगुट) और केरल कांग्रेस (जीजेफ गुट)। कम्युनिस्ट पार्टी के नाम से दो पार्टियाँ हैं। इसी प्रकार मुस्लिम लीग के नाम पर दो दल हैं। जाति और सम्प्रदाय के आधार पर जितने दल केरल में है, उतने किसी अन्य राज्य में नहीं। कर्नाटक में स्वर्गीय देवराज अर्स ने कांग्रेस गतिविधियों से निराश होकर 'क्रान्तिरंगा' की स्थापना की। जनवरी 1983 के कर्नाटक विधानसभा चुनावों में जनता–क्रान्तिरंगा गठबन्धन को 224 सीटों में से 95 स्थान मिले।

मेघालय की तीन प्रमुख क्षेत्रीय पार्टियाँ हैं – आल पार्टी हिल लीडर्स कांफ्रेंस, हिल स्टेट डेमोक्रेटिक पार्टी तथा हिल्स पीपुल यूनियन मेघालय की तीनों क्षेत्रीय पार्टियाँ स्थानीय स्वायत्तता की मांग तो अवश्य करती हैं, पर वे देश की एकता व अखण्डता का विरोध नहीं करती। 2 मार्च 1983 को इन दोनों पार्टियों ने मिलकर लिंगदोह के नेतृत्व में एक मिली–जुली सरकार बनायी जो सिर्फ एक महीना चल पायी। इस समय मणिपुर में कई प्रादेशिक दल विद्यमान हैं, जैसे मणिपुर हिल यूनियन (M.H.U.), कूकी नेशनल एसेम्बली (Kuki National Assembly), मणिपुर जनमुक्ति सेना पूरी तरह से आतंकवादियों के नियन्त्रण में है और यह देश की एकता के लिए एक बड़ा खतरा है। नागालैण्ड में इस समय कई प्रादेशिक दल सक्रिय हैं, जिस नागा नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी (Naga National Democractic Party), यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रण्ट (United Democretic Front) तथा नागा नेशनल काउन्सिल (Naga National Council), त्रिपुरा में एक प्रमुख प्रादेशिक दल 'त्रिपुरा उपजाति युवा समिति' है। कांग्रेस (आई) ने 1983 के विधानासभा चुनावों के लिए इस पार्टी के साथ गठबन्धन किया था। मिजोरम में भी कई प्रादेशिक दल विद्यमान हैं, जिनमें पीपुल्स कांफ्रेंस (People's Conference) तथा मिजो यूनियन पार्टी (Mizo Union Party) उल्लेखनीय हैं। ये दोनों दल पूर्णतया राष्ट्रवादी हैं। यहाँ पिछले 15 वर्षो से 'मिजो नेशनल फ्रण्ट' भी सक्रिय है। लाल डेंगा के नेतृत्व में इतने हिंसा तथा तोड़फोड़ की नीति अपनायी थी। परन्तु, जून 1986 में एक समझौता हुआ, जिसके तहत मिजोरम को पूर्ण राज्य का दर्जा दिये जाने का आश्वासन दिया गया। फरवरी 1987 में मिजोरम भारत का 23वां राज्य बना और विधानसभा चुनावों में मिजो नेशनल फ्रण्ट को पूर्ण बहुमत मिला और उसके नेता लाल डेंगा ने राज्य की बागडोर संभाली।

### 2.4.8 निष्कर्ष

कांग्रेस के कमजोर होने से क्षेत्रीय एवं राज्य स्तरीय दलों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। शिव सेना, तेलगूदेशम्, अन्ना द्रमुक, अकाली दल, समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, लोकशक्ति, तृणमूल कांग्रेस, बीजू जनता दल जैसे दल आज भी अपने–अपने प्रभाव वाले राज्यों में राज्य राजनीति की प्रमुख धुरी हैं। भारत में राजनीतिक दल राजनीतिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। भारत में करीब 2300 से अधिक पार्टियाँ होने के बावजूद केवल 8 राष्ट्रीय पार्टियाँ हैं। 1980 के दशक के बाद से बहु–दलीय प्रणाली के बाद देश में गठबंधन की सरकारों का दौर चला है जो केन्द्र एवं राज्य दोनों में मौजूद है। क्षेत्रीय पार्टियाँ चुनावी राजनीति में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

### 2.4.9 मुख्य शब्दावली

- दलीय व्यवस्था
- अवसरवादिता

- दल–बदल
- अल्पसंख्यक
- मार्क्सवादी
- क्षेत्रीय
- विदेश नीति

### 2.4.10 अभ्यास हेतू प्रश्न

1. भारत में चुनाव आयोग द्वारा वर्णित विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रकार क्या है?
2. क्षेत्रीय दलों के गठन के पीछे कौन–कौन से कारण है? इनमें से एक क्षेत्रीय दल/पार्टी के संदर्भ में वर्णन कीजिए।
3. भारत के संदर्भ में 'एक–दलीय प्रभुत्व बनाम बहु–दलीय प्रणाली' से आप क्या समझते हैं?
4. गठबंधन सरकार से आप क्या समझते हैं और 1980 के बाद गठबंधन सरकारों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

### 2.4.11 संदर्भ सूची


- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.

- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.